ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत चमत्कार

एक पुरातन ऋषि का दिव्य जन्म

१४ सितम्बर सन् १९४२, में उत्तर-प्रदेश के गाजियाबाद जिले के, ग्राम खुर्रमपुर-सलेमाबाद में एक विशेष बालक का जन्म हुआ। बालक जन्म से ही एक विलक्षणता से युक्त था। और विलक्षणता यह कि जब भी यह बालक सीधा, श्वासन की मुद्रा में, कुछ अन्तराल लेट जाता या लिटा दिया जाता, तो उसकी गर्दन दायें-बायें हिलने लगती, कुछ मन्त्रोच्चारण होता और उसके उपरान्त विभिन्न ऋषि-मुनियों के चिन्तन और घटनाओं पर आधारित ४५ मिनट तक, एक दिव्य प्रवचन का प्रसारण होता। पर एक अपठित ग्रामीण बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जन-मानस आश्चर्य करने लगा, बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनों की गूढ़ता के विषय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नहीं था। इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनों से ही हुआ। कि यह आत्मा सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालों में, शृङ्गी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म लेने का कारण बनी। इस जन्म में अपठित रहने की स्थिति में जैसे ही यह शरीर श्वासन की मुद्रा में आता तो कुछ अन्तराल बाद इस दिव्यात्मा का पूर्व जन्मों का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष में उपस्थित सूक्ष्म शरीरधारी दिव्यात्माओं के समक्ष एक सत्संग सदृश्य स्थिति बन जाती जिसमें इस महान आत्मा का सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के लिए प्रवचन होता। जिसमें इस आत्मा के पूर्व जन्मों के शिष्य महर्षि लोमश मुनि पूज्य महानन्द के प्रवचन भी होते। क्योंकि इस दिव्यात्मा का स्थूल शरीर यहां मृत्यु लोक में स्थित होने के कारण वहां सत्संग में दिये जाने वाला दिव्य प्रवचन इस शरीर के माध्यम से यहाँ उपस्थित जन-मानस को भी सुनाई देते हैं। इन प्रवचनों में ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है, जो किसी भी मनुष्य को, समाज और राष्ट्र को उच्च कोटि का जीवन जीने का कारण पैदा करने का सामर्थ्य रखते हैं। -शृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान

१ अध्यात्म युक्त विज्ञान 03 03 1982

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहां परम्परागतों से उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेद वाणी में उस मेरे देव, जो विज्ञानमयी माना गया, मानो जिसका विज्ञान आयतन कहलाता है। आज हम उस अपने प्यारे प्रभु की महिमा का गुणगान गाते जा रहे थे। क्योंकि वे महिमावादी है और उसका ज्ञान और विज्ञान नितान्त माना गया है, बहुत से वैज्ञानिक हुए, परन्तु कोई वैज्ञानिक ऐसा नहीं हुआ, जो परमपिता परमात्मा के विज्ञान को सीमा बद्ध कर सके क्योंकि वे सीमा से रहित है, वे सीमा में आने वाले नही है। वो रचनाकार है रचना कर रहा है। ज्ञान और विज्ञान की आभा में वो रमण कर रहा है।

तो मेरे प्यारे! आज हम उस अपने देव की महिमा का गुणगान-जैसा हमारा वेद मन्त्र कहता रहता है। वेद मन्त्र यह कहता है 'शनै वश्वकं व्रणा वृत्ये देवाः' मानो ये जो शनि अपनी आभा में गति कर रहा है। बेटा! इस ब्रह्माण्ड की आभा में ही शनि नहीं कहलाते, नाना कहलाते है। मैंने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था परन्तु आज का हमारा वेद मन्त्र क्या कह रहा है? बेटा! कल हम इससे पूर्व वाक्यों में रजोगुण तमोगुण सतोगुण मानों उसको अतिगृह में और गृहों में उसका वास हो रहा है इसके ऊपर हमारा विचार विनिमय हो रहा था। परन्तु आओ मैं आज तुम्हें साहित्य में ले जाना चाहता हूँ।

महाराजा मेघनाथ की विज्ञान दृष्टि

बेटा, हमारे यहां त्रेता के काल में रावण का राष्ट्र बड़ा विशाल माना गया है उनका जितना भी वंश था वो भारद्वाज मुनि के चरणों में ओत-प्रोत हो करके बेटा ज्ञान और विज्ञान में रत रहां मुझे स्मरण आता रहता है महाराजा मेघनाथ, जो पातालपुरी के कुछ विभाग पर और त्रिपुरी पर राज्य किया करते थे। परन्तु उनका ज्ञान और विज्ञान मानो विशाल था। मेरे प्यारे! देखो, उनकी पत्नी सुलोचना महाराजा शेष जो एक राजा थे, वे उनकी कन्या थी। और वो भी उतनी ही वैज्ञानिक थी जितने उसके पतिदेव थे, उन्होंने नाना प्रकार के अस्त्रों का प्रायः निर्माण किया और उन निर्माणवेत्ताओं में और भी नाना ऋषियों के द्वारा

शिक्षा अध्ययन की। परन्तु अणु, महाअणु और त्रसरेणु के ऊपर वह अनुसंधान करते थे।

बेटा! एक बार उन्होंने महाराजा इन्द्र से प्रार्थना की कि आप हमें कुछ शिक्षा दीजिए। महाराजा इन्द्र ने उन्हें एक आग्नेय अस्त्र प्रदान किया। जिस अग्नि अस्त्र में ये विशेषता थी कि उसका प्रहार करने के पश्चात् नीचे जल हो जाता और ऊर्ध्वा में मानो अग्नि की प्रबलता प्रारम्भ हो जाती, तो सेना नष्ट हो जाती। ऐसा यन्त्र उन्हें महाराजा इन्द्र से प्राप्त हुआ।

मंत्र-चिन्तन से यन्त्र निर्माण

मेरे प्यारे! देखो, महाराजा रावण, महाराजा शिव के द्वारा बेटा! देखो वो नाना प्रकार का अध्ययन करते थे। महाराजा शिव को उन्होंने अपना पूज्यपाद महापिता के तुल्य स्वीकार किया। महाराजा कार्तिकेय और महाराजा रावण दोनों एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण करते थे। मेरे प्यारे! उन्होंने एक मन्त्र को ले करके एक यन्त्र का निर्माण किया, जैसे एक मानव एक स्थली पर विद्यमान है और वह मानो ये कह रहा है ''आभाः मंगलं व्रत्रे अस्तः'' ''मेरे प्राणों की रक्षा करो'' तो दूसरा मानव कह रहा है कि ''मैं आ रहा हूं तुम्हारे प्राणों की रक्षा हो जायेगी'' साहस के द्वारा वह मानव बेटा! देखो अपनी आभा में नियुक्त हो जाता है

महाराजा रावण और कार्तिकेय ने इसी प्रकार के यन्त्रों का निर्माण किया। जिससे हमें संसार में कोई विजय न कर सके। क्योंकि विजेता का जब घोष होने लगता है तो मानव में अभिमान की मात्रा बलवती हो जाती है।

मेरे प्यारे! उन्होंने नाना यन्त्रों का निर्माण किया, जिसमें एक यन्त्र ऐसा था कि एक मानव संग्राम कर रहा है और उस यन्त्र में उसकी आभा आ रही है मानो देखो, उसकी आभा से वह विजयी नहीं हो रहा है। इस प्रकार का यन्त्र उन्होंने निर्माण किया। इस प्रकार का विज्ञान बेटा! मानवीय मस्तिष्कों में नृत्य करता रहा है।

राजा रावण और कार्तिकेय का अनुसन्धान

आज मैं विशेष चर्चाओं में नहीं पहुंचूंगा। विचार विनिमय ये, मेरे प्यारे! देखो, वे राजा रावण और कार्तिकेय दोनों कैलाश पर्वत पर अपनी विज्ञानशाला में अनुसंधान करते थे। महाराजा शिव भी उनके पास आते रहते थे और वह उन्हें युक्तियां प्रकट करते रहते थे। कौन- कौन सी धातुओं और तरंगों को एकत्रित करने से मानो देखो, यन्त्रों का निर्माण हो जाता है। तो उनका वह मिलान करते रहते थे और मिलान करते हुए उसमें वे अनुसन्धानित रहते थे। मेरे प्यारे! यह यन्त्र उन्होंने जाना, यह यन्त्र कैलाश पर्वत पर महाराजा शिव की विज्ञानशाला में निर्माणित हो गया क्योंकि कार्तिकेय महान वैज्ञानिक थे! महाराजा गणेश भी महान वैज्ञानिक थे।

सूर्य-विद्या के ज्ञाता महाराजा गणेश

बेटा! गणेश जी महाराज सूर्य की समस्त विद्या को जानते थे। सूर्य की विद्या क्या थी ? उसकी नाना किरणें आती रहती थी, किरणें पिपाद बनाती रहती हैं। उन पिपादों को जानना और उनमें रत रहना और मेरे प्यारे! सूर्य की किरण कितनी दूरी पर, वहां से पृथ्वी पर, यहां पर उसका प्रभाव होता, माता के गर्भ स्थल में शिशु निर्माण कर रहा है, निर्माण हो रहा है। परन्तु जब वह निर्माणित हो रहा है, तो ''ब्रह्मणां दिव्यां लोकां ब्रह्मे कृताः'' मेरे पुत्रो! जब वह अपनी आभा में गति करने वाला, माता के गर्भ में जब वे किरण प्रवेश करती है, तो माता का उनसे समन्वय हो जाता है। माता अपने को सौभाग्यशाली और अपने में महान स्वीकार करने लगती है।

सुदर्शन चक्र

मेरे प्यारे! देखो, ये सूर्य की किरणों वाला जो विज्ञान है, यही वह विज्ञान है, जो सुदर्शन चक्र का निर्माण करता है। यह सुदर्शन चक्र महाराजा शिव के पास था, जो उन्होंने महाराजा इन्द्र को प्रदान कर दिया था। यही सुदर्शन चक्र मेघनाथ को प्राप्त हो गया। जो मुनिवरो! देखो, सुलोचना के भण्डार में विद्यमान रहता था। मानो देखो उस सुदर्शन चक्र में ये विशेषता थी कि संकल्प से जिस शत्रु को समाप्त करना हो वे संकल्प मात्र से गति करता हुआ मुनिवरो! देखो उसके कण्ठ के भाग को दूरी कर देता था। जैसे मुनिवरों! देखो, एक मानव दूरी पर विद्यमान है परन्तु वह कह रहा हैं ''मैं तेरी मृत्यु कर दूंगा, तेरी मृत्यु का कारण मैं ही बनूंगा,'' परन्तु वही शब्द है, वही परमाणु है उन परमाणुओं को वायुमण्डल से बेटा! वैज्ञानिक लेकर यन्त्र निर्माणित करता रहता है। उनको ग्रहण करता हुआ, उससे यन्त्रों का निर्माण करता रहता है।

विज्ञान की ऊर्ध्व गति

मेरे पुत्रो! आज मैं विज्ञान के युग में तो क्या, आज मैं तुम्हें ये उच्चारण करने जा रहा हूं कि हमारे यहां विज्ञान कितना ऊर्ध्वा में रहा है, विज्ञान कितनी पराकाष पर रहा है। माता प्रीति कर रही है बालक रूदन कर रहा है, माता उसे स्नेह दे रही है। परन्तु देखो, स्नेह वाले यन्त्र भी मुनिवरो! देखो, वैज्ञानिकों ने जान लिए। बेटा! विज्ञान की उपलब्धि कहां से होती है? ये तो तुम्हें प्रतीत हो गया होगा कि विज्ञान की उपलब्धि होती है, परमाणु वाद से। विज्ञान की उपलब्धि होती है मानव के शब्दों से। विज्ञान की उपलब्धि होती है, जब मानव के आन्तरिक विचार

अन्तरिक्ष में गति करते है। मेरे प्यारे! उनके प्रति भी राग न होकर उपेक्षा होनी चाहिए। अन्तरिक्ष वाले जो परमाणु है, उनसे ही विज्ञान की उपलब्धि हुआ करती है और उसी से मानव अपने को धन्य स्वीकार करता है।

आज मैं बेटा! तुम्हें कहां ले गया हूँ। बेटा! महाराजा रावण और कार्तिकेय दोनों ने इस प्रकार के यन्त्र को निर्माणित किया था।

यन्त्र दूरी है, उसकी तरंगे शरीर पर आ रही है बेटा! जब तक शरीर पर वे तरंगे आ रही है, तब तक उस मानव को कोई भी विजय नहीं कर सकता, संग्राम में उसे विजय नहीं किया जा सकता।

मृत्यु का अभिप्राय

तो मुनिवरों! देखो, ये विज्ञान मानवीय धाराओं में राजा, महाराजाओं के यहां, ऋषि-मुनियों के मस्तिष्कों में नृत्य करता रहता है। मेरे पुत्रो! देखो, इन वैज्ञानिक यन्त्रों का निर्माण करने वाले, मुनिवरो! देखो कौन? महाराजा रावण, जो अपनी मृत्यु को नहीं चाहते थे। परन्तु यह कोई नहीं जानता कि यह मृत्यु है क्या? जिसके ऊपर मानव इतना ग्रही, निर्माणित करता रहता है। परन्तु मृत्यु शरीर को त्यागना नहीं कहते। मैंनें तुम्हे पुरातन काल में कहा था विज्ञान में अज्ञानता का आ जाना ही मृत्यु है। मेरे प्यारे! देखो, जब विज्ञान हुआ और उसमें जब अज्ञान आ जाएगा तो मृत्यु हो जाएगी। शरीर के त्यागने का नाम ही मृत्यु नहीं कहते। तो पुत्रो! विचार विनिमय क्या, महाराजा रावण हिमालय में तपस्या करते थे और तपस्या के द्वारा नाना प्रकार की विज्ञानशालाए। उनके द्वारा थी। उस विज्ञान में वे रत रहते थे आज का वेद पाठ यही तो कहता है ''युंजनं दिव्य गतप्रह्णः अश्रुं न व्रतीः'' मानो देखो, यही वेद मन्त्र कहता है कि मानव को अपना विकास करना चाहिए वैज्ञानिक बनो और वैज्ञानिक बनना ही मुनिवरो! देखो, मानव का मानवीयत्व कहलाता है ?

माता सुलोचना का तप

मेरे प्यारे! महाराजा मेघनाथ और महारानी सुलोचना के एक पुत्र का जन्म हुआ। वह जो पुत्र था, माता सुलोचना के तपों का परिणाम था। माता तप कर रही है, मुनिवरो! देखो, उसका संस्कार हो रहा है और संस्कार के पश्चात् वह ब्रह्मचर्य से अपने गर्भ को तपा रही है, माता तपा रही है। मेरे प्यारे! देखो, वह माता गायत्री छन्दों में और वेद मन्त्रों के विज्ञान में रमण करती रहती थी। देखों उनके यहां एक पुत्र का जन्म हुआ। उस सन्तान का नामोकरण करने के लिए महर्षि भारद्वाज मुनि आये। महर्षि भारद्वाज ने बेटा! संुजुकेतु उसका नामोकरण किया। वह संुजुकेतु भारद्वाज की विज्ञानशाला में सूर्य की उड़ान उड़ने वाला वैज्ञानिक बना। बेटा मैं जब इतिहास के पृषें को लेता हूं तो प्रायः इतिहास एक ऐसा बन जाता है कि इतिहास की आभा में कोई वैज्ञानिक गति कर रहा है। मेरे प्यारे! क्योंकि विज्ञान मानव का मौलिक गुण कहलाता है और ममत्व को धारण करने वाला अपने को ही प्राप्त होता रहता है।

श्वेताश्वेतर ऋषि

तो मुनिवरो! देखो, भारद्वाज मुनि के यहां नाना प्रकार की विज्ञानशालाओं में, नाना शिक्षालयों में अनुसंधान होता रहा है क्योंकि राजा रावण विज्ञान के लिए हिमालयों में जो शिव के यहां विश्वविद्यालय था, वे उनके यहां वैज्ञानिक बनने पहु।चे। परन्तु महाराजा कुम्भकरण भी उनके द्वारा जा पहु।चे। महाराजा कुम्भकरण के पुत्र का नाम श्वेताश्वेतर था। महाराजा श्वेताश्वेतर नाम के ऋषि भी हुए है। परन्तु ये श्वेताश्वेतर महाराजा कुम्भकरण की संतान थी। बेटा! महाराजा कुम्भकरण के पदचिन्हों पर अपने जीवन को व्यतीत करके बेटा! वे ऋषि बन गए। मानो उनका नाम श्वेताश्वेतर ऋषि कहलाये। देखो, वे हिमालयों की कन्दराओं में जाकर के मुनिवरो! देखो, महर्षि प्रह्णण

महर्षि शिलक और महर्षि दालभ्य इन तीनों ऋषियों के साथ चतुर्थ ऋषि बने। तो मेरे प्यारे आज मैं तुम्हें कहा ले गया हूं विचार ये प्रकट कर रहा हूं, क्या यह संसार बेटा! परम्परागतों से ही वैज्ञानिक तथ्यों पर रहा है? और जितना भी ज्ञान है, और विज्ञान है उस ज्ञान और विज्ञान में बेटा! देखो, मानवता की आभा निहित रहती है जिसके ऊपर अनुसंधान करने पर ये प्रायः प्रतीत होता है कि मानव को इस संसार में मृत्युंजय बनना चाहिये।

निर्माता माता

मेरे प्यारे! जहां इस संसार को बनाने के लिये महान पुरुष हुए है, वे सब माताओं के द्वारा उत्पन्न हुए। माता अपनी लोरिया देती रहती थी। विज्ञान की वार्ताए। प्रकट करती रहती थी। मानो ज्ञान की आभा में प्रायः रमण कराती रहती थी। तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या, जहां इस संसार का निर्माण करने में माताए। अग्रसर रही हैं, तपस्विनी बन करके और तप करने की आभा में वह रमण करती रहती है। मेरे प्यारे! बारह-बारह वर्षों तक तप करने के पश्चात् सन्तान की उपलब्धि की इच्छा प्रकट हुई। ऐसी मेरी प्यारी माताए। हुई। मुनिवरो! देखो! बारह वर्ष महारानी सुलोचना ने तप किया, एक सन्तान को जन्म दिया। बाईस वर्षों तक तप करने के पश्चात् मुनिवरो! कुम्भकरण की देवी सोमकेतु ने बेटा! एक श्वेताश्वेतर को जन्म दिया जो महा गुरु हुए, वैज्ञानिक भी थे। इसी प्रकार मुनिवरो! देखो, माताए। अपने जीवन में महानता को प्राप्त होती रही है। आज मैं विशेष चर्चायें तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूं, विचार ये देने आया हू। कि प्रत्येक मानव को बेटा! अनुसंधान करना चाहिये, अनुंसधान उनका कर्तव्य होना चाहिये।

श्रेष्ठ राजा

मेरे पुत्रों। राजा रावण के साम्राज्य में कोई सूक्ष्मता नहीं थी, कोई घृष्टता नहीं थी। परन्तु देखो, एक समय महाराजा रावण और महाराजा शिव पातालपुरी पहु।चे और पातालपुरी में उनके ;रावण के पुत्र अहिरावणद्ध राज्य कहते थे, प्रजा आनन्द से रहती थी। मेरे प्यारे! राजा रावण का भव्य स्वागत हुआ, भव्य पूजन हुआ। मेरे प्यारे! उस पूजन में अपनी संस्कृति के अवशेष उन्हें देखो, बेटा! प्रकट करायें और ये कहा 'कि महाराज! हमारे यहां इस प्रकार के अवशेष हमें प्राप्त होते हैं।' मेरे प्यारे! पातालपुरी में राजा रावण का पुत्र अहिरावण राज्य करता था। महाराजा शिव उनके पूज्यपिता के तुल्य रहते थे। मेरे प्यारे! वे भी प्रजा के विचारों को श्रवण करके आनन्दित होते रहते थे। बेटा! राजा वह होता है जिसमें प्रजा मग्न रहने वाली हो, हर्ष ध्वनि करती रहती हो और मुनिवरो! देखो, जहां प्रजा में हर्ष नहीं होता राजा के प्रतिँ जहां स्नेह नहीं होता राजा के प्रति प्रजा मानो निन्दा करने लगती है उस राजा का कोई तप नहीं होता, वह तपों से विहीन हो जाता है। क्योंकि मुनिवरो! देखो, जिस राजा के राष्ट्र में मेरी पुत्रिया। अपने ङाघ्गार को नष्ट करके उदर की पूर्ति करती हो तो वह कोई राष्ट्र नहीं होता, वह कोई समाज नहीं होता।

राष्ट्र की सम्पदा

तो मुनिवरों! देखो, वहां पातालपुरी में प्रजा ने एक यज्ञ किया और महाराजा शिव का वहां उपदेश हुआ। वहां मुनिवरों देखो एक विश्वविद्यालय था और उस विश्वविद्यालय में जब याग हुआ, वेदों की ध्वनि हुई तो महाराजा शिव ने उस ध्वनि को लेकर के अपना उपदेश प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा ''हे राजन! आज मेरा बड़ा सौभाग्य है जब मैं तुम्हारी नगरी में आया हूँ। तुम्हारे राष्ट्र में आ पहु।चा हूँ। तुम्हारा राष्ट्र मुझे एक दूसरे में पिरोया हुआ-सा दृष्टिपात आता है। विज्ञान तुम्हारे यहां नृत्य कर रहा है और उस वैज्ञानिक आभा में रमण करता हुआ राजा अपने को धन्य स्वीकार करता है। क्योंकि विज्ञान राष्ट्र की सम्पदा है और चरित्र राष्ट्र का प्राण कहलाता है

बेटा! विज्ञान राजा की सम्पदा है और चरित्र राष्ट्र का प्राण कहलाता है। तो जहां प्राण सूत्र में पिरोया हुआ यह जगत रहता है और राजा और प्रजा रहती है, वह राष्ट्र बेटा! कितना सौभाग्यशाली होता है, उस राष्ट्र में पुष्पांजलियाा होती है। मुनिवरों! देखो, जहां पुत्रियाा निर्भय हो करके राष्ट्र का भ्रमण करने वाली हो और मुनिवरों! देखो, उनको कोई भी कु-दृष्टि पान करने वाला न हो। बेटा! ऐसा राष्ट्र, ऐसा समाज देखो, स्वर्गमयी कहलाता है। मेरे पुत्रों! देखो, वह कोई राष्ट्र नहीं, वह कोई समाज नहीं, जहां मेरी पुत्रियाा एक छोर से दूसरे छोर तक जाने में उसको कु-दृष्टि पान करने वाला समाज हो। बेटा! वह राजा नहीं, वह समाज नहीं, वह कोई विज्ञान नहीं है, क्योंकि विज्ञान का सदुपयोग होना ही राष्ट्र की सम्पदा कहलाती है और उसके अनुसार बरतने वाला समाज बेटा! राष्ट्र का प्राण कहलाता है, जिससे मुनिवरो! देखो, ये संसार एक महान बनता है।

महाराजा अहिरावण की दिनचर्या

बेटा! मुझे बहुत से साहित्य स्मरण आते रहते है। जो तुम्हें केवल ये वाक्य प्रकट कर रहा हूं कि महाराजा शिव ने अहिरावण को यही कहा 'तुम्हारा जो सांस्कृतिक विचार है अपने चरित्र को लेकर के,तुम अपने यहां चरित्र की आभा में संस्कृति के विचारों को देते हो, यह तुम्हारे मस्तिष्क की उपज बहुत ही प्रिय है। मुनिवरो! देखो, आज का विचार हमारा ये क्या कह रहा है, हम बेटा! साहित्यिक चर्चाये, जहां मानवता की आभा में मानव रमण करता रहता है। बेटा! महाराजा शिव ने यही कहा, ''हे प्रजापालक! हे राजा! मेरा अन्तर्हृदय बहुत प्रसन्न है।'' यह प्रसन्नता ले करके वह अहिरावण की जो विज्ञानशाला थी जहां मुनिवरो! देखो, अहिरावण का भव्य राजभवन था, राज्य स्थली थी, वहां अहिरावण की पादुका रहती थी और मुनिवरो! देखो अहिरावण प्रातः कालीन याग करते और उनकी पत्नी श्वान्धिनि मानो देखो जिसको तरसनावृणित कहते थे। राजा सुबाहु जो समुद्र के तट पर रहते थे, यह उनकी कन्या थी। दोनों पति-पत्नी यज्ञशाला में विचार करते रहते। वैज्ञानिक आते, चर्चायें होती रहती, यज्ञ होते रहते, सुगन्धि होती रहती। तो मुनिवरों! देखों राजा की प्रजा उस काल में पवित्र बनती है जब राजा मानो देखौं उस क्षेत्र से बन्धा हुआ नहीं होता जहां राज्य स्थली होती है। बेटा! ऐसे राजा हुए है कि देखो, पादुका, राज्य कर रही है और प्रजा अपने नियम का पालन कर रही है। मेरे प्यारे! राजा विज्ञान में लगा हुआ और त्याग कर रहा है तो उसके चरित्र की, उसके क्रिया-कलाप की जो सुगन्धि है वह मेरे प्यारे! सर्वत्र राष्ट्र में भ्रमण करती है और प्रजा उसके अनुसार अपने को बरतने लगती है।

महारानी सुलोचना की कामना

तो विचार विनिमय क्या, मेरे पुत्रों! देखो, महाराज शिव ने जब ये क्रिया-कलाप पातालपुरी के राजा के यहां दृष्टिपात किया तो आनन्दित हो गये। सु-धाराओं में रमण करके मेरे प्यारे! देखो, वहां से उन्होंने गमन किया। गमन करते हुए मुनिवरो! वे अपने वाहन में विद्यमान हो करके महाराजा रावण और महाराजा शिव बेटा! त्रिपुरी में पहुाचे, जहां महाराज मेघनाथ राज्य करते थे। महाराजा मेघनाथ सुचरित्र थे, उनकी देवी सुलोचना भी तपस्विनी थी। वे कैसा तप करती थी-प्रातः कालीन मेरे प्रभु के राज्य में, हमारे राष्ट्र में कोई भी देवी कलघकनी नहीं होनी चाहिये। मुनिवरो! देखो, सुलोचना अपने राष्ट्र में भ्रमण किया करती थी और न्यायालय में स्वयं न्याय करती थी। मेरे प्यारे! महाराज मेघनाथ भी अपनी आभा में न्याय करता और न्याय करता हुआ मुनिवरों! देखो मग्न रहता था। उचित न्याय देकर के प्रसन्नचित हो जाता। प्रजा भी प्रसन्न होती। मेरे प्यारे! वास्तव में वहां न्यायालय था ही नहीं। परन्तु जो न्याय होता था, वह वार्ताओं में होता था। क्योंकि जब कोई दुष्कर्म करने वाला नहीं तो कर्तव्यवादी के लिए मुनिवरो! देखो, राष्ट्र का कोई न्याय नहीं होता। वो तो स्वतः ही कर्तव्यवादी है अपना कार्य कर रहा है क्योंकि

राज्य व्यवस्था उनके लिये होती है जो भ्रष्ट होते है, जो पामर होते हैं और उन पामरों के लिए मुनिवरों! देखो, राष्ट्रीय व्यवस्था रहती है। तो मेरे प्यारे! राष्ट्रीय व्यवस्था को दृष्टिपात करके महाराजा शिव बहुत ही प्रसन्न हुए। सुलोचना से वार्ता प्रकट हुई। सुलोचना यह कहा करती थी ''कि महाराज! मेरी मृत्यु भी मेरे स्वामी के साथ ही होनी चाहिये।'' इस शरीर को त्यागना, मेरे स्वामी के साथ हो। क्योंकि हम दोनों एक सूत्र में पिरोये हुए है। मुनिवरों! देखो, उनका तप कितना नितान्त रहता था। महाराजा शिव ने कहां, 'हे मेरी पुत्री! तू वास्तव में अपनी नेत्रों की ज्योति और अपनी प्रतिक्रिया को महान् बना, जिससे तेरा जीवन इस राष्ट्र और समाज के लिये महान बन करके मानो देखो, महानता को प्राप्त होगा।

उच्च राष्ट्र व्यवस्था

मेरे प्यारे! देखो, मुझे स्मरण है महाराजा शिव और महाराजा रावण का भव्य स्वागत हुआ और स्वागत हो करके वहां से उन्होंने गमन किया। महाराजा मेघनाद की विज्ञानशाला में ऐसे-ऐसे यन्त्र थे, जो मुनिवरों! देखो, वायु में त्यागने मात्र से ही संसार की मृत्यु हो जाती। मेरे प्यारे! संकल्पमयी यन्त्र थे जो संकल्पशक्ति से ही देखो, मानव अपने में उसकी आभा में रमण करता रहता। जहां मुनिवरों! देखो विज्ञान होता है वहां तप होता है और जहां तप और विज्ञान होता है वहीं मुनिवरों! देखो, राष्ट्र की व्यवस्था ऊ।ची रहती है। मानव समाज अपने कार्यों में रत रहता है तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या, आज मैं कहां चला गया बेटा! महाराजा रावण और महाराजा शिव लंका में महाराजा कुम्भकरण के द्वार पर पहु।चे। मुनिवरों! देखो, महाराजा कुम्भकरण विद्यालय में शिक्षा दे रहे थे, तेजस्वी बनें हुए थे। बेटा! उनका आहार इतना ऊ।चा था कि उसकी कोई सीमा नहीं थी। एक समय वे अपनी पत्नी से बोले 'हे देवी! मैं पीपल के, जाल के, दुग्धकेतु के विभिन्न वृक्षों को पान कर रहा हूँ। क्योंकि इनके पान से मेरी बुद्धि शुद्ध होगी, तो मैं शुद्ध परमाणुओं को एकत्रित करके यन्त्रों का निर्माण कर सकू।गा। मुनिवरो! देखो, ऐसा उन्होंने बारह वर्षों तक किया। इतनी महानता यहां राजाओं में रही है। मानो देखो, आहार और व्यवहार ही मानव को ऊ।चा बनाता है, राष्ट्र को महान बनाता है। ।

मेरे प्यारे! देखो, उनसे वार्ता प्रकट करके महाराजा शिव अपने केलाश पर चले गये महाराजा रावण मुनिवरों! देखो, अपने राज्य में चले गये, मानो देखो, वे बड़े न्यायविद थे। तो विचार विनिमय क्या, मेरे पुत्रो! देखो, ये चरित्र रहा है इस संसार का। कल समय मिलेगा तो कल मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्दों की विवेचना करेंगे। इनकी बड़ी उत्सुकता है, साहित्य के ऊपर अपना विचार देना चाहते है।

परन्तु आज का विचार हमारा ये क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुण-गान गाते हुए इस संसार-सागर से पार होना चाहते है। प्रत्येक मानव ये ही चाहता है क्या, कि हम परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को जान करके अपने में अनान्दित हो जाये। अपने आनन्द के लिए बेटा वो राष्ट्र का पदाधिकारी बना हुआ है। वो राजा बना हुआ है परन्तु देखो, आनन्द को चाहता है, आत्मोन्नति को चाहता है प्रत्येक प्राणी। आत्मा जिसका ऊ।चा है, महान है वो संसार में शोभा का अधिकारी है। अब आज का हमारा ये विचार समाप्त भी तो होने जा रहा है। साहित्य तो बहुत है, पर ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे, हम त्रेता के काल में आज भ्रमण कर रहे है। मानो ऐसा मेरा अन्तरात्मा हृदय ग्राही बन रहा है जिससे बेटा! देखो, आज हम त्रेता के काल की वार्ता प्रकट कर रहे। कल समय मिलेगा तो आगे की शेष चर्चायें कल प्रकट करेंगे। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या, मानो ज्ञान और विज्ञान संसार में महान शिखर पर रहा है, एक-एक शब्द के ऊपर ज्ञान की उपलब्धि होती है और राज्य का आभूषण बन करके रहा है। ये है बेटा! आज का वाक् अब समय

मिलेगा तो शेष चर्चायें कल प्रकट करेंगे।

२ कर्तव्य निहित राष्ट्र 04 03 1982

लाक्षागृह बरनावा

देखो मुनिवरो! आज हमने पूर्व की भाांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद-वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा प्रतिभाशाली है और उसी की प्रतिभा में मानों देखो, ये संसार प्रतिभाषित हो रहा है। मानो उसकी प्रतिभा में, ये सर्वत्र जगत उसी में ओत-प्रोत होता हुआ सा दृष्टिपात आता है। जितना भी ये जड़ जगत् अथवा चैतन्य जगत, मुझे दृष्टिपात आ रहा है, उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में मानो एक चेतना दृष्टिपात आ रही है।

पुरातन दृष्टि

बेटा! उसके विषय में और भी गम्भीरता में रमण करते है तो एक-एक वेद-मन्त्र को, विचारने से ये प्रतीत होता है, कि क्या, ये सर्वत्र जगत एक याग हो रहा है उसमें यजमान अपना साकल्प प्रदान कर रहा है, और मुनिवरो! देखों, वो साकल्य यज्ञशाला में प्रवेश करता हुआ, इस संसार को सुगन्धित कर रहा है, और ये सुगन्धि मानो द्यौ लोकों तक रमण करता रहता है। मुझे स्मरण आता है, संसार की बहुत सी वार्ताएं स्मरण है। परन्तु स्मरणवादी जो वार्ताएं है, उनमें नाना ऋषिवर याग करते रहे है, और वे रथ को द्यौ लोको तक ले जाते है। मानो, सूर्य की किरणों के साथ, गति करने वाला वैज्ञानिक ही ये यजमान कहलाता है। क्योंकि सूर्य की किरण ही संसार को प्रकाशित कर रही है और जिस काल में जितने ऊांचे वैज्ञानिक होते है, वे सूर्य की किरणों से अपने वाहनों में विद्यमान हो करके, गति करते है। तो वो काल महान, श्रेष्ठ कहलाता है। क्योंकि उसमें वाहन होते है। प्रत्येक मानव सूर्य की किरणों से मानो देखो, योग करता रहता है, और यन्त्रों में योग करता हुआ, वायु मण्डल में नाना प्रकार के लोक लोकारन्तरों में गति होती रही है। लोकों की आभा में रमण करने वाले यान, वैज्ञानिकों के समीप गति करते रहते है। तो मेरे प्यारे! आज मैं कोई विशेष चर्चा देना नहीं चाहता हूँ। अब मेरे प्यारे महानन्द जी अपने दो शब्दों की विवेचना करेगें।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् सर्वाणि भद्रा संजनाः मां प्रतिबन्धनाः।

वारणावत इतिहास

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! ये हमारी आकाशवाणी मृत-मण्डल में प्रसारित हो रही है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मानो नाना साहित्यिक चर्चा करते रहते है, और उस साहित्य में भी वैज्ञानिक खण्ड को विशेषता में प्रगट करते रहते है। परन्तु जब मुझे पूज्यपाद गुरुदेव का जीवन स्मरण आता है, तो मैं आश्चर्य में हो जाता हूँ। क्या, ये संसार का केसा कर्म-चक्र है, जिस कर्म चक्र की आभा में प्रत्येक मानव गति करता रहा है। परन्तु मैं आधुनिक काल के जगत में जाना चाहता हूं, जिस आधुनिक काल में ये हमारी आकाशवाणी जा रही है। जिस भूमि पर, जिस स्थली पर हमारी आकाशवाणी जा रही है, मानो, ये वो स्थली कहलाती है, जिस स्थली पर महाराज दुर्योधन ने एक गृह का निर्माण किया था और वो इस प्रकार की धातु का बना हुआ, निर्माणित किया हुआ गृह था, जिसमें बहुत शीघ्रता से अग्नि प्रदीप्त हो सकती थी। परन्तु उस स्थली पर क्या रहा है, जहां उस स्थली पर गृहों के घातु, गृहों के निर्माण हो, वहां उस स्थली पर न्यायालय भी रहा है। महाराजा परीक्षित के समय में विज्ञान शालाएं भी रही और बहुत-सा क्रिया कलाप होता रहा है। परन्तु देखो शमशान भूमि भी रही है, मेरी

पुत्रियों के सतीत्व का हनन भी होता रहा, परन्तु भूमि का सौभाग्य होता है।

तरंगवाद

आज मेरा अन्तरात्मा प्रसन्नयुक्त हो रहा है। जिस स्थली पर मेरी पुत्रियों का सतीत्व हनन हुआ हो, आज वहां पुनः से वेद-ध्वनि हो रही हैं उस ध्वनि को सुनकर मेरा अन्तरात्मा बहुत ही प्रसन्न रहता है। इस भूमि पर नाना प्रकार की विचार धाराए। बनती रहती है, निर्माणित होती रहती है, जिससे तरंगे उत्पन्न होती है। अशुद्ध तरंगे आती है परन्तु अच्छाईयों की तरंगों से समाप्त हो जाती है। परन्तु जितना भी यह जगत है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने तो इसको तरंगों का जगत कहा है, पूज्यपाद गुरुजी ही ये नहीं कहते, अपितु वेद का प्रत्येक मन्त्र कहता है, प्रत्येक वैज्ञानिक कह रहा है। आधुनिक काल का वैज्ञानिक हो, चाहे राजा रावण के काल का वैज्ञानिक हो, चाहे वह महर्षि भारद्वाज की विज्ञानशाला वाला वैज्ञानिक हो, परन्तु वो केवल इस संसार को मानो तरंगों का जगत् स्वीकार कर रहा है वे तरंगे चाहे मानव के श्वास से उत्पन्न होती हो, चाहे वाणी के द्वारा उत्पन्न होती हो चाहे वही धाराए। मानो देखो, अन्तरिक्ष की आभा में प्रवेश करने वाली हो। इन सर्वत्र तरंगों का समन्वय मानो देखो उस ब्रह्माण्ड और मानव के समीप कटिबद्ध रहता है।

दिशाहीन विज्ञान

जब मैं ये विचारता हूं कि आधुनिक काल का वैज्ञानिक क्या कर रहा है, और पुरातन काल का वैज्ञानिक क्या कहता है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, पुरातन वैज्ञानिकों के सम्बन्ध में मानो देखो, ये विचारधारा देते है, कि वे आध्यात्मिकवेत्ता और विज्ञानवेत्ता भी रहे है। आधुनिक काल का वैज्ञानिक विज्ञानवेत्ता तो है परन्तु आध्यात्मिकवेत्ता नहीं है, आध्यात्मिकवेत्ता न होने के कारण वो ये स्वीकार कर रहा हैं कि कोई शक्ति है जो हमारे जीवन को उत्सुक कर रही हैं परन्तु उस शक्ति के ऊपर अनुसंधान नहीं कर रहा है। इसी के मूल में यदि वो अनुमानीकरण, अनुसंधान नहीं कर रहा है, तो इसका परिणाम ये, कि वो समाज अग्नि की ज्वाला में धधक रहा है। मानो देखो, अग्नि की ज्वाला में ये समाज रमण कर रहा है, क्योंकि विज्ञान का दुरूपयोग हो रहा है, आध्यात्मिकवाद न रहने से वैज्ञानिक जब आध्यात्मिकवाद में प्रवेश नहीं कर रहा है, जिस क्रिया से मानव का जीवन प्रतिक्रियावादी बन रहा है, परन्तु इसके ऊपर वैज्ञानिक जब अनुसंधान नहीं कर रहे है, तो उसका परिणाम विज्ञान का दुरुपयोग हो रहा है।

वैचारिक वैविध्यता से अज्ञान

विज्ञान का दुरुपयोग क्यों हो रहा है? इसलिए हो रहा है क्योंकि समाज में नाना प्रकार की धारा वाले व्यक्ति है, अज्ञान हैं अज्ञान क्यों है ? इस अज्ञान का मूलक मानो यहां का अधिराज कहलाता है, राष्ट्रीय विवशता कहलाती है। क्योंकि राष्ट्रीय विवशता में, उसकी एकता में आध्यात्मिकता का प्रभाव नहीं है। उसमें केवल स्वार्थवाद है, और वो जो स्वार्थवाद है वो भावना इतना बलवती हो जाती है मानो अपने कर्तव्य को शान्त कर रहा है। कर्तव्यवाद नहीं रहा है, और जब कर्तव्यवाद नहीं रहता है, तो कुछ समय रहा है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव व्याख्या करते रहते हैं, कि जब कर्तव्यवाद नहीं होता, तब अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। वो समय दूरी नहीं है, जब अग्नि प्रदीप्त होकर के ये अग्नि के मुख में समाज चला जाता है। परन्तु यह मैं नहीं कहता, यह वायुमण्डल कर रहा है, यह हम नहीं कह रहे है यह समुद्र की तरंगे कह रही है। मानो देखो, ये गाथा गाई जाती हैं ये हम नहीं कहते, ये समाज का वैज्ञानिक कहता है। ये हम नहीं कहते मानो समाज का स्वार्थवाद कह रहा है।

अज्ञान से आत्महीनता

आज जब हम यह विचारते है कि वैज्ञानिक जब संसार को विज्ञान पर आध्यात्मिकवाद का मिश्रण न रहने से मानो देखो, वो त्रास दिया जा रहा है, ये त्रास ऐसा है, कि मानव अपने से भयभीत हो रहा है। क्योंकि ज्ञान नहीं होता तो आत्मबल कहां से आयेगा और आत्मबल नहीं होगा तो वहां एक मानव दूसरे मानव का आहार करने पर तत्पर होगा, मानो वह दूसरे के वैभव को संग्रह करने में लगा हुआ है आज मैं इस सम्बन्ध में अपने पूज्यपाद को निर्णय करा रह हूँ। परन्तु पूर्व काल का वैज्ञानिक किस प्रकार का संग्रह कर रहा है, मैं जब राम के काल पर टिप्पणियों करने लगता हूं और मेरे पूज्यपाद गुरुदेव रावण के साहित्य को प्रकट कर रहे है परन्तु ये संसार में बहुत सी वार्ताएं लुप्त हो गई। लुप्त क्यों हो गई? क्योंकि यहां देखों, दूसरे राज्यों से आ करके प्राणियों ने अज्ञानता के कारण मानो देखो, पोथियों को, आख्यायिकाओं को अग्नि के मुखारबिन्द में प्रवेश करा दिया वो अग्नि में प्रवेश हो गई। परन्तु जिसके द्वारा ये आख्यायिका रही उसी में उसके ऊपर कुछ शुद्ध कुछ अशुद्ध उसी प्रकार का सहित्य रहां

परन्तु जब ये विचार आता है कि पूज्यपाद गुरुदेव कहते है कि महाराजा कुम्भकर्ण महान थे। परन्तु आधुनिक काल का प्राणी उनको राक्षस कहता है।

कर्तव्य-प्रेरक राजा

पूज्यपाद गुरुदेव की साहित्यिक वार्ताओं में वह ;कुम्भकर्णद्ध निद्रा नहीं लेता था। परन्तु आधुनिक काल का समाज कहता है कि वह छः महीने तक निद्रा में रहता, और छः माह जागृत रहता। परन्तु मैं ये विचार देता रहता हू।, कि प्रत्येक मानव एक वर्ष में छः माह निद्रा में रहता है। ये कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि छः माह तक रात्रि होती है और छः माह तक दिवस होता है। जब रात्रि से दिवस बनता है परन्तु वो आधे समय में निद्रा में रहता है, आलस्य और प्रमाद में रहता है, यही तो प्रत्येक मानव करता रहता है परन्तु अर्थों का अनर्थ करने से साहित्यिक वार्ताए। सब समाप्त हो गई। ऐसा समय क्यों हुआ, अनुसंधान क्यों नहीं किया गया, इसका दोषी राजा है, क्योंकि राज्य व्यवस्था जो होती है, राजा जो होता है वो समाज में कर्तव्य लाने के लिए होता है। कर्तव्यवाद के लिए होता है। समाज में प्रत्येक मानव कर्तव्यवादी बने और रूढ़ि नहीं रहनी चाहिए। यहां नाना प्रकार के विचारों में रूढ़िया। होती है, उन रूढ़ियों का सम्बन्ध राष्ट्र से होता है और वो रूढ़ि ही राष्ट्र को निगल जाती है। एक समय आता है जब धर्म की रूढ़ि राष्ट्र को निगल जाती है, राष्ट्र में चरित्र नहीं रहने देती, क्योंकि मानव जानता नहीं कि धर्म किसे कहते है ? इसके ऊपर मेरे पूज्यपाद गुरुदेव बहुत-सी वार्ता प्रकट करते रहते हैं, धर्म की चर्चा करते रहते है।

धर्म

परन्तु देखो, बेटा! धर्म तो मानव की इन्द्रियों में समाहित रहता है परन्तु यहां धर्म रूढ़ि को स्वीकार करता है। राजा एक समाज में जाता है, और वहां नाना धर्म उच्चारण कर रहा है। परन्तु जब धर्म एक है तो नाना उच्चारण क्यों कर रहा है, इससे प्रतीत होता है कि आज के पदाधिकारियों को ये ज्ञान नहीं कि धर्म किसे कहते है। क्योंकि धर्म तो एक ही वचन है, और वो नाना धर्म कह रहा है नाना रूढ़ि नहीं कह सकता। क्योंकि उसे राज्य करना है, इसे संसार से प्रजा से वैभव को संग्रह करना है। वह राज्य नहीं कर रहा है ये संग्रह करने वाली प्रवृत्तिया। विशेष हो जाती है, तो प्रजा में अज्ञानता आ जाती है रूढ़ियों के बल पर अज्ञान समाहित करता रहता है, यहां संसार में ज्ञान होना चाहिए।

हिरणाकुश का कु-शासन

बेटा! एक समय की वार्ता मेरे कण्ठ आ रही है। ऐसा राष्ट्र आज चल रहा है ऐसा राष्ट्र महाराजा हिरणाकुश

के समय चला था। महाराजा हिरणाकुश मानो प्रजा के श्रृंगार को अपने में संग्रह कर रहा था और देखो, वो संग्रह करता हुआ अपने में अभिमानी बन गया और उसने ये कहा-कि ''मैं भगवान हू।''। मानो भगवान कोई वस्तु नहीं है, मैं ही प्रभु हू।, मैं ही ओ3ृम् हूँ। परन्तु यदि बुद्धि होती तो ये वास्तव में ऐसा न होता है, उस समय में एक समाज बना था, उस समाज का नाम श्रिप सिंह था। श्रिय एक समाज बना, जो क्रान्तिकारी मानो देखो, उसके बल पर उसकी आभा में महाराजा हिरणाकुफश राज्य करता था, जब वो राज्य करता तो पुनः एक क्रान्तिकारी समाज का जन्म हुआ जिस समाज को हमारे यहां ''अद्वान'' कहते है। ''अद्वान'' एक धर्म बना। जैसा आधुनिक काल में मोहम्मद के मानने वाले है, ईसा के मानने वाले है, और भी नाना प्रकार के धर्म कहलाती है। परन्तु वे धर्म नहीं ये रूढ़ि कहलाते है ये नाना रूढ़िया। है क्योंकि धर्म तो वो नेत्रों से प्रकट होता है, धर्म वाणी से प्रकट होता है, धर्म श्रोत्रों से प्रकट होता है ये परमात्मा का दिया हुआ धर्म है, ये मानवता की रचना नहीं है उस समय ऐसा ही समाज बना।

आस्तिक महाराजा प्रहलाद

परन्तु हिरणाकुफश के एक पुत्र था जिसका नाम प्रहलाद था और प्रहलाद आस्तिक था, प्रभु भक्त था, प्रभु का जिज्ञासु था, परन्तु देखो, वह ''ब्रह्मणां ब्रहे नरसिंह नाम ब्रहे कृतस्ताः'' एक नरसिंह समाज की उत्पत्ति हुई। देखो, उसमें क्रान्ति हुई, उस क्रान्ति का अग्रणी कौन बना? प्रहलाद के पिता के द्वारा नाना प्रकार की यातनाए। दी गई, समाज को पनपने नहीं दिया। परन्तु देखो नाना रूढ़िवादियों ने और भी नहीं पनपने दिया। परन्तु महाराज प्रहलाद इतना शक्तिशाली, नम्रता से बना। प्रभु ने उसकी सहायता की मानो देखो, वह हिरणाकुश ''प्राणाः स्वस्ति ब्रणाः'' मानो उस समाज में, मृत्यु समाज में मुनिवरों! देखो, उसको समाप्त कर दिया और महाराजा प्रहलाद उसके पश्चात् राजा बना और राष्ट्र में सुचरित्रता से राष्ट्र का पुनः निर्माण किया। निर्माण होने से वे नाना रूढ़ियों में जो धर्म के नाम पर बनी हुई थी उन रूढ़िवादियों के जितने भी विशेषज्ञ बुद्धिमान थे सबको महाराजा प्रहलाद ने एकत्रिता किया अब उन्होंने अपने ज्ञान में, दर्शनों में प्रवेश किया, वेद की आख्यायिका होने लगी। महाराजा प्रहलाद ने गम्भीरता से ये सोचा, विचारा, चिन्तन किया कि ये समाज केसे ऊ।चा बन सकता है ?

आचार्यों का निष्कर्ष

महाराजा प्रहलाद के एक गुरु थे उनका नाम था महर्षि श्वेतकेतु। महर्षि श्वेतकेत तपस्या करते थे। मानो वे वनों से राजा के समीप आते और महाराजा प्रहलाद को शिक्षा देते। वेद के पंडित्य थे, वेद के मर्म को जानते थे। वेद के मर्म को जानने के पश्चात् उन्होंने प्रजा में जितने आचार्य नाना रूढ़िवादियों को एकत्रित किया। उनका शास्त्रार्थ हुआ और विचार विनिमय हुआ और मानो विचार करते-करते अन्तिम छोर पर पहु।च गये। जो विजय हो गया, उस धर्म को मानो उन्होंने स्थिर किया और धर्म को स्थिर करके समाज को उपदेश दिया गया।

समाज में सबसे प्रथम कर्म याग है। मुनिवरों! सबसे महान कर्म संसार में याग महाराजा प्रहलाद ने, ऋषियों ने माना है। किसलिए माना क्योंकि ये सुगन्धित है ये चरित्र देता है। ये मानव को ब्रह्मचर्य की शुद्वता देता है। ये मानव के विचारों को महान बनाता है और सष्टि की रचना के आधार पर उसकी रचना हुई है इसलिए मानो बुद्धिमान और महाराजा प्रहलाद अपने राष्ट्र में भ्रमण करते हुए अपनी प्रजा को सदुपयोग देते थे। सदुपदेश से प्रजा उनके अनुसार बरतने लगी जब प्रजा इनके अनुसार बरतने लगी तो राष्ट्र महान बन गया। राष्ट्र महान बन गया और हिरणाकुश का ह्रस हो गया।

अज्ञानता से रूढ़ियाँ

परन्तु देखो, इस प्रकार का राजा जब समाज में होता है तो उस राजा के राष्ट्र में क्रान्ति नहीं होती। देखो अशुद्ध क्रान्तिया।, रक्तभरी क्रान्तिया। उस काल में होती है जिस काल में राष्ट्र नायक बुद्धिमान नहीं होते और धर्म के मर्म को नहीं जानते। जो धर्म के मर्म को जानता है। जो धर्म को लेकर चलता है वो राष्ट्र मानो देखो कर्तव्यवादी बन जाता है महाराजा प्रहलाद कर्तव्यवादी बने और अपने कर्तव्य को करते और नरसिंह अवतार मानो समाज का बना और उस समाज ने देखो, एक नास्तिक और रूढ़िवादी पिता का हनन कराया। परन्तु हनन क्यों हुआ? क्योंकि नाना रूढ़ियों के समाज और राष्ट्र में क्रान्ति होती है। क्योंकि रूढ़ि बनती है, अज्ञानता के कारणँ अज्ञानता से रूढ़ि बनती है। इन रूढ़ियों से मानो देखो, आकुंचनता में प्रवेश करता है ये आकुंचनता ही समाज की मृत्यु है। गृह में आकुंचन ही अधर्म है। आकुंचन ही मानो देखो, पाप का मूलक बन के रहता है।

अभिमान में मृत्यु

आज जब मैं ये विचारता रहता हू।, जब मैं ये दृष्टिपात करता हू। कि वैज्ञानिक पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश कर रहे है, अन्तरिक्ष में यन्त्र गति कर रहे है, चन्द्रमा की यात्रा में लगे हुए है मानो देखो, मंगल की यात्रा कर रहे है। जब मैं ये विचारता हूं कि ये धर्म और आत्मा का कितना दर्शन करते है। उसमें, वो शून्य हो जाते है परन्तु जहां मैं ये उच्चारण करता हूं कि सूर्य की किरण जहां नाना प्रकार का परमाणुवाद देते है। जहां ये वाहनों में गति देते है। वही सूर्य की किरणें मानव के चरित्र को ले करके प्रातः काल में आती है, उस चरित्र का कितना निर्माण किया है कितना संकल्प किया है। तो आधुनिक काल का वैज्ञानिक पूज्यपाद! मौन हो जाता है। जब मैं वैज्ञानिकों की वार्ता प्रकट करता रहता हूं, परन्तु देखो, मानव, मानव को नष्ट करने के यन्त्रों में लगा हुआ है, समाज को नष्ट करने में लगा हुआ है। राजा, राजा को विजय करने की कोशिश करता है। ये जो विजय करने की भावना है मानो ये सबसे महान कारण है, रक्तभरी क्रान्ति आने का। रक्तभरी क्रान्ति उस काल में आती है । जब अभिमान होता है, उसमें मृत्यु हैं। उसमें जीवन नहीं है। ।

तो हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मैं ये वार्ता प्रकट कर रहा हूं कि ये जो आधुनिक काल का समाज है इसमें जो पदों की लोलुपता है ये मानो अज्ञानता कहां से आई? ये रूढ़ियों से आई हैं ये नाना प्रकार के धर्म के ऊपर जो रूढ़िया बन गई है और रूढ़ियों में अज्ञानता है क्योंकि धर्म एक है ''एकोकी धर्मः'' मानो देखो, दर्शन को जानने वाला है मानो उद्गान गाने वाला आयु को प्राप्त होता रहता है इस आभा को अपनाना चाहिए, कि कर्तव्यवाद अज्ञानता से नष्ट होता है और विज्ञान का दुरूपयोग होने से देखो, युवक समाज मानो मूर्खता में परिणत हो जाता है, पामर बन जाता है।

अधिकार याचना से पतन

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में प्रकट कराया है कि जैसे नृत्यकों का नृत्य हो रहा है, मेरी पुत्रियों को नृत्य कराने के लिए तत्पर हो गए हैं। परन्तु देखो, वह जो नृत्य है वो राजा का राष्ट्र मानो देखो उसका व्यवसाय बन गया है और व्यवसाय बनने के कारण मेरी पुत्रियों को नृत्य कराया जा रहा है, उसको प्रत्येक ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, श्रवण करते है परन्तु उससे ब्रह्मचर्य दूषित हो जाता है और ब्रह्मचर्य के दूषित होने से मानो देखों उसमें आलस्य और प्रमाद आ जाता है और जब आलस्य और प्रमाद आ जाता है तो वहां कर्तव्य नहीं रह जाता और जब वहां कर्तव्य नहीं रहता है तो कर्तव्य की भावना नहीं रहती है तो उस काल में क्या होता-रक्तभरी क्रान्ति आती है क्योंकि अधिकार की भावना बलवती हो जाती है, अधिकार की बलवती चरम सीमा पर चली जाती है। वो अधिकार प्राप्त करने को तत्पर है परन्तु कर्म करने के लिए तत्पर नहीं रहा तो ये रक्तभरी क्रान्ति के कारण बनते

रहते है। विचार क्या है? कि ये आज कोई नवीन वाक्य नहीं है सष्टि के प्रारम्भ से समय-समय पर ऐसा ही होता रहा है।

परन्तु आज मैं बहुत से साहित्यों की चर्चा प्रकट नहीं कर रहा हूँ। पूज्यपाद गुरुदेव रावण के इतिहास को लेकर के चले है। परन्तु वे कितनी महानता का प्रदर्शन कर रहे है ये रावण का समाज जब कर्तव्यवादी बनेगा तो उस काल में रावण का विनाश भी हो जाएगा। परन्तु देखो इसी प्रकार आज मैं ये विचार देने के लिए आया हूँ। वायु मण्डल मुझे पुकार कर कह रहा है। वायुमण्डल ये कहता है कि समाज को मानो देखो, चरित्र को आभा में लाने के लिए प्रत्येक मानव को अपनी मानवीयता के ऊपर महान चिन्तन करना है। ।

धर्म का स्वरूप

मैं आधुनिक काल के राजाओं शासकों को ये कहता हूं कि तू धार्मिक बन, तू धर्म को लेकर-चल और धर्म कहते किसे हैं? कर्तव्यवाद कौं और कर्तव्यवाद का नाम धर्म है जैसे नेत्र दृष्टिपात करते है। ये उसका कर्तव्य है परन्तु अगर उसमें कु-दृष्टि आ जाती है तो ये पाप के गोलक बन जाते है इसी प्रकार आज मैं विशेष चर्चा पूज्यपाद को प्रकट नहीं कर रहा हूँ। आज का वैज्ञानिक प्रकृति के सूक्ष्म से प्रकोप जब आते है तो प्रजा को भय की प्रीति दे रहा है और ये कहता है ''मंगल व्रते'' देखो मानो ये समाप्त हो जाएगा। अरे भोले वैज्ञानिक आज तू इतना भोला क्यों बन गया है इतनी अज्ञानता में क्यों प्रवेश कर गया है। ये प्रकृति के प्रकोप तो स्वाभाविक रूपसे आते रहते है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि समय-समय पर देखो अग्नि-जो समुद्रों में प्रदीप्त हो जाती है और वो अन्तरिक्ष में प्रवेश करती है मानो देखो, जलों का आरोपण होता रहता है। इसमें तुम वैज्ञानिक शान्ति पूर्वक अपने विज्ञान के ऊपर अपने परमाणुवाद पर विचार विनिमय करते चले जाओ। परन्तु देखो, तुम प्रजा को भयभीत देना शान्त करो। आज ये ;भयद्ध क्यों है क्योंकि राजा प्रजा से वैभव को संग्रह कर रहा है इसका एक ही मूल कारण है और कोई कारण नहीं है। इसीलिए देखो, वह जितने भी प्रिय कर्म है उन कर्मों को वह व्यवसाय बना रहा है मानो देखो, व्यवसाय बना करके अपने कार्यों की पूर्ति करना चाहता है। ।

वेदों-ध्वनि का प्रभाव

तो आज मैं विशेष चर्चा प्रकार करने नहीं आया हू।, पूज्यपाद गुरुदेव को यह निर्णय देने आया हू। कि आधुनिक जो जगत है जहां यह हमारी आकाशवाणी जा रही है यहां नाना प्रकार के त्रास हुए है नाना प्रकार के विचारों का प्रादुर्भाव होता रहा है जहां मेरी पुत्रियों का श्रृंगार हनन होता रहा है मानो देखो, ये भी रूढ़ियों का एक मूल कारण रहा है, उत्साह देखो, वहां वेदों ध्वनि होती रहती है, उस वेद ध्वनि को क्रान्ति में परिवर्तन नहीं कर सकते है परन्तु देखो, मेरा ये अन्तरात्मा प्रसन्नयुक्त है, मानो आभा में रमण कर रहा है। अब मैं पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः- मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपनी वेदनामयी वाणी के द्वारा हमें कुछ संसार का परिचय कराया। परन्तु ये समय चलता ही रहता है। ज्ञान और विज्ञान वाला जगत है। आज हम ये उच्चारण कर रहे थे कि यहां प्रत्येक मानव याग कर रहा है। परन्तु आज का हमारा ये वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। कल मेरे प्यारे महानन्द जी उनकी इच्छा तो हो रही है परन्तु समय दिया जा सकेगा तो देंगे। आज का ये वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय ये कि मानव समाज को अपने चरित्र, अपने कर्तव्य के पालन करना चाहिए। क्योंकि कर्तव्यवाद में हिंसा नहीं होती संग्रह करने में हिंसा होती है। मेरे प्यारे महानन्द जी का एक ही वाक्य था कि प्रत्येक मानव अपनी-अपनी आभा से कटिबद्ध है और वे अपनी-

अपनी आभा में अपने अपने स्थानों पर धर्म और कर्तव्यों का पालन करता चला जाए तो वो समाज और वो मानव श्रेष्ठ कहलाता है क्योंकि विज्ञान में भी आध्यात्मिकवाद होना चाहिए और मानव समाज में विज्ञान और अध्यात्म दोनों होने चाहिए, जिससे आध्यात्मिकवाद, कर्तव्यवाद की आभा में रहता है। परन्तु कल हम ये परिचय देगें कि धर्म का सम्बन्ध किससे रहता है ? ये चर्चायें कल प्रकट करेंगे। आज का वाक्य समाप्त! अब वेदों का पाठ होगा।

३ राजा ज्ञानश्रुति का राष्ट्र चिन्तन 05 11 1982

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भा।ति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान करते चले आ रहे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है। जो इस संसार की आभा में रमण कर रहा है। जो चैतन्य और जड़वत् ब्रह्माण्ड का स्वामी है। इस संसार के एक-एक कण में जो व्याप्त रहने वाला है और इस संसार को गति दे रहा है। क्योंकि प्रत्येक वेद-मन्त्र उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गा रहा है।

ब्रह्म गाथा

जिस प्रकार ये माता का पुत्र माता की गाथा गा रहा है। मानो जैसे ये पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा बन करके अथवा गाथामयी स्वरूप बन करके इसकी गाथा का वर्णन कर रही है। इसी प्रकार प्रत्येक वेद-मन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है। मानों जैसे यह पृथ्वी है, इस पृथ्वी के गर्भ स्थल में जो नाना प्रकार का खाद्य और खनिज पदार्थों की उत्पत्ति होती रहती है। इसका निर्माण होता रहता है। वह ब्रह्माण्ड की गाथा गाती है। क्योंकि यह जो ब्रह्माण्ड है, यह नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों वाला है। यह लोक-लोकान्तरों वाला जो ब्रह्माण्ड है। प्रत्येक मण्डल का समन्वय रहता है, इस पृथ्वी मण्डल के तत्त्वों से। मानो इससे कहीं सुगन्ध की धातु का निर्माण हो रहा है, कहीं रत्नों की धातु का निर्माण हो रहा है, कहीं जल को शक्तिशाली बनाया जा रहा है। ये नाना प्रकार के व्यंजनों को जन्म देने वाली है। नाना रसों का स्वादन इसी के गर्भ स्थल में वशीभूत हो रहा है। नाना सूर्य की किरणें आती रहती हैं। मानो देखो, द्यौ मण्डल से प्रकाश आता रहता है। सूर्य उसका माध्यम बना हुआ है। इस पृथ्वी को तेजोमयी बना रहा है। मानो एक मण्डल का सम्बन्ध नहीं रहता, नाना ध्रुव मण्डल इत्यादियों का भी समन्वय होता रहता। मंगल और चन्द्र इत्यादियों का समन्वय होने से मेरे प्यारे ये जो पृथ्वी है, ये पृथा कहलाती है। कहीं अरून्धति मण्डल है, कहीं मेरे प्यारे! देखो, वशिष्ठमण्डल है। इन नाना प्रकार के मण्डलों के समन्वय में सब की पृथ्वी गाथा गा रही है। मानो ये जो ब्रह्माण्ड है इसकी गाथा कौन गा रही है ? पृथ्वी गाती चली आ रही है। गान के रूप में गा रही है। पा।चों प्रकार का रसोस्वादन इसे प्राप्त होता रहता है। परन्तु यह जो रसों का स्वादन है वह प्रत्येक लोक-लोकान्तरों की आभा में रमण कर रहा है। चाहे वह चन्द्रमा का प्राणी हो, चाहे वह मंगल मण्डल का प्राणी क्यों न हो, चाहे वह बृहस्पति मण्डल का हो वस्तुतः वह जो पा।चों प्रकार का रस है। वो इस पृथ्वी में है। तो कोई और मण्डलों में विद्यमान हैं परन्तु देखो वह ब्रह्मा की गाथा गा रही है। इस ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है। कौन गा रही है ? पृथ्वी गा रही है। ।

मेरे पुत्रो! देखो, जल गति कर रहा है। सूर्य की किरणें उसे तपा रही है। तपा करके वही जल शक्तिशाली बन करके वाहनों में मानों क्रियाकलाप कर रहा है। मेरे पुत्रो! देखो, यह ब्रह्म की गाथा गा रही है। ब्रह्माण्ड की गाथा गाने वाली कौन है ? यह पृथ्वी है। बेटा! इसे वेद ने पृथा कहा है। पृथ्वी कहा है। रेणु कहा है, रेणुका कहा है, इसको अहिल्या कहा है, इसको गौ कहा है, इसको मेघ कहा है, इसको अजा कहा है, भिन्न-भिन्न प्रकार के रूपों में बेटा! वैदिक साहित्य इसका वर्णन कर रहा है। परन्तु आज मैं बेटा! पर्यायवाची शब्दों में ले जाता हुआ केवल तुम्हें ये वर्णन करा रहा हू। कि यह पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है। जैसे यह पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा गाती है। जैसा माता का पुत्र है। माता की गाथा गा रहा है। मेरे प्यारे! देखो, माता का पुत्र ब्रह्मचर्य वत्स बन जाता है। वह तेजोमय तपस्वी बन जाता है। तो संसार का प्राणी कहता है। यह मानो ब्रह्मचारी है। यह ब्रह्म की गाथा गा

रहा है। मानो यह ब्रह्मवर्चोसि है। यह ब्रह्मचारी है।

राष्ट्र की पवित्रता का आधार

मानो देखो, यह इसी माता के गर्भ से कितना सुयोग्य बालक का जन्म हुआ है। तो वो ब्रह्मचारी बेटा! माता की गाथा गा रहा है। माता का वर्णन कर रहा है। बेटा! मुझे स्मरण है, एक समय महर्षि प्रह्वाण महाराजा ज्ञानश्रुति के यहां जा पहुंचे। महाराजा ज्ञानश्रुति महान पवित्र राजा थे। उनका राष्ट्र बड़ा सतोगुणी था। परन्तु जब महर्षि प्रह्वाण उनके यहां पहुंचे तो राजा ज्ञानश्रुति ने अपने आसन को त्याग दिया, आसन को त्याग करके कहा ''आइये ऋषिवर, पधारिये'' वह ऋषिवर विद्यमान हो गये राजा ने कहा ''कहो भगवन्, आज बिना सूचना के आप जैसे महान तपस्वियों का मेरे यहां आगमन हुआ है। मैं इस कारण को नहीं जान पाया हूँ।'' मेरे पुत्रो! देखो, महर्षि प्रह्वाण ने कहा ''हे प्रभु! मैं इसलिये आया हू। क्योंकि मैंने यह श्रवण किया है कि महाराजा ज्ञानश्रुति का राष्ट्र बहुत पवित्र है।'' ऋषि मुनियों द्वारा हिमालय की कन्दराओं में एक सभा का आयोजन हुआ और मुझे यह निश्चय करने के लिए कहा गया कि महाराजा ज्ञानश्रुति के यहां उसके राष्ट्र की कितनी प्रतिभा है। उसका राष्ट्र कितना महान है? मानो देखो, मैं तुम्हारे राष्ट्र को दृष्टिपात करने के लिये आया हू। उसका निरीक्षण करने आया हूँ।

राष्ट्र की उच्चता

मेरे प्यारे महाराजा ज्ञानश्रुति ने कहा ''ऋषिवर! राष्ट्र के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ?'' उन्होंने कहा ''मैं क्या नहीं जानता। उन्होंने कहा आप यह जानते हैं कि राष्ट्र का अध्वर्यु कौन है ? उन्होंने कहा ''राष्ट्र का अध्वर्यु, राष्ट्र का चरित्र ही राष्ट्र का अध्वर्यु कहलाता है। मेरे प्यारे! राजा ने कहा हे प्रभु! आप जानते हैं कि राष्ट्र का उद्गाता कौन है ? उन्होंने कहा हे राजन् ! राष्ट्र की जो बुद्धिमत्ता है। उसके विवेकी पुरुष ही राष्ट्र के उद्गाता कहलाते हैं। ऋषि से राजा ने कहा कि आप जानते हैं कि राष्ट्र का पुरोहित कौन है ? उन्होंने कहा ''राष्ट्र का पुरोहित वह कहलाता है जो राष्ट्र के लिए ऊर्ध्वा में विचार करता है, उसके उत्थान का चिन्तन करता है। राजा के राष्ट्र में क्षत्रियों को अपने उपदेशामृतों से पवित्र बनाता है। अपने में स्वयं चरित्रवान, ओजस्वी देखो, वर्चोसि बन करके और राष्ट्र के पुरोहितों को ऊंचा बनाता है, तो वह पुरोहित कहलाता है। महाराजा ज्ञानश्रुति ने कहा ''प्रभु! आप ये जानते हैं कि राष्ट्र का यजमान कौन है ? राजन! राष्ट्र का यजमान तो वह कहलाता है, जो राष्ट्र का मेघ बन करके रहता है, जो राष्ट्र को यज्ञशाला के रूप में स्वीकार करता है। जैसे यज्ञशाला में से सुगन्ध आ रही है। तरंगें अन्तरिक्ष को प्राप्त हो रही है। देवता उसका पान कर रहे हैं। अन्तरिक्ष की तरंगों को ऊंचा बना रहे हैं। मानो दूषित वातावरण का आहार कर रहे हैं। मानो देखो, जैसे यज्ञ में यज्ञशाला की तरंगें अग्नि से उद्बुद्ध होकर के, सुगन्धि युक्त हो करके अन्तरिक्ष के वातावरण को ऊंचा बनाती है। इसी प्रकार मानो देखो, यज्ञशाला में जो यजमान होता है, जो यज्ञशाला के आंगन को भव्य बनाने वाला है विचारों से सुगन्धित बनाने वाला है। इसका जो शब्द है, वह यम लोक में रमण करता हुआ राष्ट्र को ऊंचा बनाता है। परन्तु राष्ट्र में राजा को ही मानो यजमान कहते हैं। जो अश्वमेघ याग करता है। अश्वमेघ याग कौन करता है ? अश्वमेघ याग वह राजा करता है, जो संसार को विजय कर लेता है। मेरे प्यारे! जो संसार की आभा को जानने वाला बनता है। अग्रतं ब्रह्माः लोकं शुभं भक्तिः ब्रह्मणा लोकं ब्रहस्तुः रुद्रं भावं ब्रह्मणो लोकाम्।

अश्वमेघ

हे राजन! तुम्हारा जो राष्ट्र है वो आभा में गति करने वाला है। तुम्हारे राष्ट्र में मानवीयता की धारा पवित्र होनी चाहिये जिससे तुम्हारी मानवीयता एक आभा में रमण करती हुई मानो देखो, अभ्यागति को प्राप्त होने वाली

हो। हे राजन! मानो देखो, यजमान के समीप विद्यमान होने वाला जो अध्वर्यु है, जो गाथा गा रहा है। जो राष्ट्र की आभा में रमण कर रहा है। हे राजन! वो यजमान है, जो अश्वमेघ याग करता है। अश्वमेघ याग वह राजा करता है जो मानो देखो, प्रजा को ऊंचा बनाता है। महान आभा में रमन करने वाला, सुसज्जित बनने वाला मानो देखो, 'स्वर्णते मे अश्वनं गाथां' गान गाता है। मेरे प्यारे! देखो, ज्ञानश्रुति ने ऋषि की विद्वत्ता को जान लिया, उसकी आभा को जान लिया और आभा को जान करके यह कहा समविताः देवस्याम् समविताः रूद्रमः भवः समविताः यज्ञम भवतेः समविताः समभगं प्रह्वः लोकाः।

राष्ट्र का प्राण

मेरे पुत्रो! देखो, जब उन्होंने यह कहा तो राजा ने कहा कि प्रभु! एक वाक्य और जानना चाहता हूं आपसे। इस राष्ट्र का प्राण कौन है ? मेरे प्यारे! देखो, ऋषि कहता है ''कि राजा के राष्ट्र में राजा का जो विज्ञान है, आध्यात्मिकवाद है वहां महाप्राण की कल्पना की जाती है। और यदि भौतिकवाद है, तो वहां प्राण की कल्पना की जाती है। मानो एक प्राण और एक महाप्राण है क्योंकि देखो, भौतिकवाद को जान करके तो वहां प्राण की कल्पना करता है। और जो मुनिवरो! देखो, केवल विज्ञानमय तरंगों में रमण करने वाला है, एक परमाणु को दूसरे में पिरोने वाला है, यन्त्रों का निर्माण करने वाला है। वह मानो मेरे प्यारे! जो सूर्य लोकों तक की यात्रा करने वाला, नाना लोक-लोकान्तरों में गति करने वाला, वह राष्ट्र का प्राण कहलाता है। मेरे पुत्रो! जब राजा, ज्ञानश्रुति ने यह वाक्य श्रवण कर लिया तो उस समय राजा ज्ञानश्रुति ने ''मत्तो ब्रह्मे वातस्पते।'''हे बालक, हे ऋषिवर! तूने किस माता के गर्भ स्थल में जन्म लिया है जो तूने इतनी विद्या को प्राप्त किया।' तो मेरे प्यारे! विचार क्या, मुनिवरो! देखो, माता के गर्भ से उत्पन्न होने वाला ब्रह्मचारी माता की गाथा गा रहा है, और वह कह रहा है, कि ममत्व को धारण करने वाले तू माता का वर्णन कर रहा है। मेरे प्यारे! देखो, माता ही गाथा गाने वाली है, माता का ही उद्गीत गाया जा रहा है। तो मुनिवरो! देखो, वेद का ऋषि कहता है, मानो देखो, जैसे ये पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है, इसी प्रकार मुनिवरो! देखो, पुत्र माता की गाथा गा रहा है। माता का वर्णन कर रहा है। माता की वह पूर्णता को प्राप्त हो रहा है। मेरे पुत्रो! देखो, यह बालक महान है। मानो देखो, ज्ञानश्रुति और ऋषि दोनों का विचार विनिमय होता रहां मेरे प्यारे! देखो, महखष प्रह्वाण और महखष शिलक अष्ट्रधाम माता के पुत्र कहलाते थे ''प्रमाणम ब्रेहे सुता।''

राष्ट्र का पालक चैतन्य देव

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि चर्चा करने लगे, महखष प्रह्वाण कहते हैं कि महाराज आप धन्य है। आपका राष्ट्र मानो देखो, मुझे विचित्र प्रतीत हो रहा है। परन्तु अब ऋषि प्रश्न करता है, ऋषि कहता है राजा ज्ञानश्रुति! तुम्हारे राष्ट्र का पालक कौन है ? राष्ट्र का पालन तो चैतन्य देव किया करते हैं। मानो देखो, वही राष्ट्र का पालन करता है। मुझे तो बुद्धिमान समाज ने, ब्राह्मण समाज ने जो ब्रह्म की उड़ान उड़ने वाले निष्पक्ष ब्राह्मण होते हैं उन्होंने, गुरुओं ने मुझे चुनौती प्रदान की है। और यह कहा है कि तुम सब पुरुषों में विशिष्ट हो। मानो देखो, तुम नियम से इस प्रजा का पालन करो। मैं तो केवल अपने नियम का पालन करता हूँ। जैसे माता-पिता गृह में रहते हैं। माता-पिता का जो भी क्रियाकलाप होता है जो भी उनका कर्म होता है मानो देखो, उसी के आधार पर बालक- बालिका गृह में क्रियाकलाप करना प्रारम्भ कर देते हैं। यदि माता-पिता चरित्रवान् हैं, यदि माता-पिता संयमी हैं तो बालक देखो, गृह में संयमी बन जाते हैं। और माता-पिता उदण्ड है तो बालक भी उसी प्रकार का क्रियाकलाप प्रारम्भ करने लगते हैं। मानो देखो, माता पिता बुद्धिमान हैं दर्शनों का अध्ययन करते हुए उन पर चलते हैं तो बालक भी

उसी प्रकार बरतने लगते हैं। उसी प्रकार की तरंगों में सम्मलित होने लगते हैं। इसी प्रकार मेरे पुत्रो! देखो, ऋषि से राजा कहता है कि ''हे प्रभु! मैं राष्ट्र का पालन नहीं कर रहा हूँ। मैं तो स्वतः अपने जीवन का अध्ययन करता हूँ। और अध्ययन करके मानो पांडित्य की दृष्टि से मुझे राजा घोषित किया गया है। कि तू राजा है। प्रजा का प्रतिनिधि है। जो मैं क्रियाकलाप करता हू। प्रजा मेरे अनुसार बरतती रहती है। मेरे प्यारे! देखो, यदि ऊ।चा कार्यक्रम मेरे जीवन में रहेगा तो प्रजा भी उसी प्रकार बरतने वाली बनेगी। मेरे पुत्रो! देखो, ये वाक्य ऋषि को राजा ने वर्णन कराया, तो ऋषि मौन हो गये। परन्तु देखो, अब ऋषि कहते हैं ''हे राजन! तुम इस प्रजा को कैसे उद्बुद्ध करते हो ? कैसे इस प्रजा का उत्थान करते हो ? मेरे प्यारे! देखो, राजा ने कहा हे प्रभु! हे ऋषिवर! मैं अपने जीवन का उत्थान करना जानता हूँ। मैं अपने जीवन का उत्थान करता हूँ। तो प्रजा का जीवन स्वतः मानो देखो ऊर्ध्वा में गति करने लगता है। वह उत्थानमयी बन जाता है।

जनक

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने पुनः यह प्रश्न किया ''महाराज! तुम इस प्रजा की रक्षा कैसे करते हो? उन्होंने कहा ''हे भगवन् ऋषिवर! मैं मानो अपनी इन्द्रियों पर साम्राज्य करता हूँ। मेरी जो पा।च ज्ञानेन्द्रिया। है, पा।च कर्मेन्द्रिया। हैं जो मानो देखो, इनके ऊपर शासन कर लेता है, वह जनक कहलाता है। और जो अपने पर शासन कर लेता है, तो प्रजा की रक्षा मानो स्वतः हो गयी, उसके अनुकूल बरतने वाली बन जाती है। मेरे प्यारे! देखो, ऋषि प्रसन्न हो गये। पुनः यह प्रश्न किया कि ''हे राजन! तुम इस प्रजा को अग्रणी कैसे बनाते हो ? उन्होंने कहा ''प्रभु! जैसे सूर्य है, यह सूर्य प्रातःकाल में उदय होता है, और प्रकाश को ले करके आता है। और जब प्रकाश को लेकर के गति करता है तो मानो अन्धकार स्वतः समाप्त होता चला जाता है। रात्रि इसके गर्भ में परिणत हो जाती है। इसीलिये प्रजा और राजा दोनों मानो देखो, अपने में संलग्न हो करके क्रियाकलाप प्रारम्भ कर देते हैं। तो देखो, प्रजा का जो आलस्य और प्रमाद है वह नष्ट हो जाता है। विवेकी और प्रकाशक कर्म करता हुआ राष्ट्र को प्रकाश में ले जाते हैं। तो मेरे प्यारे! राजा ने जब ये वृत्तिया। प्रकट की, तो ऋषि ने कहा धन्य हैं। हे राजन! तुम वास्तव में वीरत्व को प्राप्त होने वाले हो, तुम तो जनक हो। जनक उसी को कहते हैं, जो अपने को जान लेता है। जैसे आत्मा इस शरीर में मेरे पुत्रो! चेतना बनी हुई है। वह इस शरीर का राजा है। शरीर का भी राजा चेतनावत है उसी के कारण इन्द्रिया। गति कर रही है। महाराजा ज्ञानश्रुति ने कहा हे ऋषिवर! आप तो जानते ही हैं आपने तो ये चर्चायें स्मरण की हैं। ''संभवा गत प्रवे''

अभिमानी इन्द्रियाँ

एक समय देखो, इन्द्रियों में और प्राणों में विवाद हो गया। इन्द्रियों और प्राणों में जब विवाद हो गया, तो भयंकर विवाद हुआ। और वह विवाद इतना पराकाष्ठा पर चला गया। मानो देखो, वे अपने में ही ईर्ष्या करने लगे और जब ईर्ष्या, द्वेष की घृणा बलवती हो गयी तो मुनिवरो! देखो, उनकी एक सभा हुई। उनमें यह हुआ कि मैं बलवती हू।, मैं बलवती हूँ। मेरे प्यारे! देखो, उनमें जब यह प्रश्न हुआ तो मेरे प्यारे! उनकी मध्यस्थता करने लगे, उन्होंने कहा 'समझाओ, तुम कैसे बड़े

हो ? मुनिवरो! चक्षु ने कहा ''हम इसलिये बलवती हैं क्योंकि हमारे नहीं रहने से यह शरीर नहीं रहेगा। उन्होंने कहा ''तो तुम चले जाओ'' वह एक वर्ष के लिये मेरे प्यारे! देखो, नेत्र चले गये। मानो देखो, नेत्रों से हीन शरीर जीवित रहां मेरे प्यारे! उन्होंने पिफर श्रोत्रों से कहा कि तुम कैसे बलवती हो, उन्होंने कहा महाराज इसलिये अग्रणी है। 'हमारे चले जाने पर यह शरीर नहीं रहेगा' उन्होंने कहा तुम भी चले जाओ' एक वर्ष के लिये चले गये

परन्तु देखो मानो श्रोतों से हीन रहा शरीर अपने में क्रिया-कलाप करता रहां मेरे प्यारे! देखो, उनको आश्चर्य हुआ, उनका अभिमान नष्ट हो गया। मेरे प्यारे! देखो, ग्रहण ने कहा मैं भी बलवती हूँ। अब ग्रहण भी चला गया। मेरे प्यारे! देखो, उसके पश्चात् वह जीवित है। वह ग्रहण से हीन रहा मेरे प्यारे! रसना चली गयी, मानो देखो, रसना न रहते हुए भी जीवित रहां मेरे प्यारे! मन चला गया निरकल्पना बना गया, परन्तु जीवित रहां उसके पश्चात् जब सब इन्द्रियों की परीक्षा हो गयी, उनका अभिमान समाप्त हो गया।

कर्त्तव्यवादी चरित्र

मेरे प्यारे! अब प्राण-सत्ता कहता है कि ''अब मैं जा रहा हूँ। मैं यहां से गमन कर रहा हू।।'' मेरे प्यारे! जब प्राण सखा वह आत्मा चेतन्य मानो देखो प्राणत्व के साथ में जब शरीर से निकलने लगा तो बेटा! शरीर शून्य बन गया। मानो निष्क्रिय बन गया, निष्क्रिय बनने के कारण तब उन्होंने नमस्कार किया। सब इन्द्रियों ने संगठित हो करके नम्रता से प्राण-सखा के चरणों को स्पर्श किया और यह कहा हे देव! तुम तो हमारे सखा हो। आप कहां जा रहे हो। हे प्रभु! आप यही विराजिये मेरे प्यारे! देखो, उसके ;प्राणद्ध शरीर में रहते हुए तो जीवन सक्रिय और न रहते हुए तो मानो शरीर निष्क्रिय है।

इसी प्रकार महाराजा ज्ञानश्रुति ने कहा हे प्रभु! राजा के राष्ट्र में यदि चरित्र उसके समीप है, तो मानो देखो, यह राष्ट्र जीवित रह सकेगा और यदि चरित्र रूपी प्राण नहीं है तो मानो देखो प्राण से रहित हो करके यह शून्य गति को प्राप्त हो जाती है। मैं इसी रूप सहित राष्ट्र का पालन करता हू। मैं अपने मानवीय तप का पालन करके राष्ट्र की तरंगों में उड़ान उड़ता रहता हूँ। ऋषिवर! मानो यह मेरा निश्चय हो गया है कि यदि समाज में, गृह में, प्रत्येक मानव यदि कर्त्तव्य का पालन नहीं करेगा, कर्त्तव्य के पालन करने का नाम ही चरित्र माना गया है। और यदि कर्त्तव्यवाद नहीं रहेगा। कर्त्तव्य नहीं रहेगा तो देखो, समाज का प्राण चला जाता है। जब यह प्राण चला जाता है तो मुनिवरो! देखो, शून्य बिन्दु की आभा में यह मानो गति करने लगता है। शून्यता को प्राप्त हो जाता है। इसीलिये वेद का आचार्य कहता है। हे मानव! अपने प्राण- सखा को जानने वाला बन। क्योंकि ''प्राणं ब्रह्माः प्राणं रूद्राः प्राणं ब्रह्मे पुरुषोतमं।'' मेरे प्यारे! यह जो प्राण है इस प्राण को लेकर के मेरे प्यारे! विज्ञान गति करता है। ऐसा वेद का ऋषि कहता है।

महाराजा ज्ञानश्रुति ने कहा-कि एक समय मेरे समीप वैज्ञानिकों का एक समूह आया और उन वैज्ञानिकों ने कहा कि महाराज, हम विज्ञान में उड़ान उड़ना चाहते हैं। हमने कुछ वैदिक तत्वों को जाना है। राजा ने कहा कि यह जो पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है जिसमें जल शक्तिशाली बन रहा है। यह जो प्राणी जगत चल रहा है उससे मेघों की उत्पत्ति होती है। समुद्र में बड़वानल नाम की अग्नि गति करती रहती है। उससे मानो देखो जलाप्लावन आये। ऐसा हम क्रियाकलाप करते रहते हैं। तो हे वैज्ञानिकों! मेरी इच्छा यह है कि तुम इस पृथ्वी के गर्भ से कोई भी तत्व को ग्रहण नहीं करो, तुम सूर्य से ऊर्ध्वा में ज्ञानश्रुति ने कहा-ऋषिवर। मेरे यहां स्वदेशम् नाम के वैज्ञानिक है। जो मानो देखो सूर्य की किरणों से त्रिगुणात्मक, त्रिपरमाणु ले करके यन्त्रों का निर्माण करते हैं। आज मैं तुम्हें दृष्टिपात करा रहा हू। कि सूर्य की किरणों को ले करके यन्त्रों में त्रिमुखी जो परमाणु सूर्य की किरणां के साथ उनका यान तेजी से गति करता रहता है। मानो देखो इस प्रकार का विज्ञान मेरे यहां प्रायः गति करता रहता है। जब मैं अध्यात्मवादी ऋषियों से वार्ता प्रकट करता हू। कि मेरे राष्ट्र में विवेकी पुरुष होने चाहिये, वे विवेकी जो महान दृष्ट्रियों में रमण करने वाले हो, मानो वो अराजकता के मूल कारणों को मेरे राष्ट्र में नहीं रहने चाहिये।

श्रमिक राजा

मेरे प्यारे! देखो, महाराजा ज्ञानश्रुति ने जब ऐसा कहा तो प्रह्वाण आश्चर्य चकित हो गये। उन्होंने कहा धन्य है। राजन! तुम्हारा राष्ट्र बहुत प्रियतम है। मानो देखो उन्होंने कहा 'प्रभु! आपका भोजन, आपका साधन कैसे क्रियाकलाप में आता है। राजा ने कहा ''कि प्रभु मैं मानो देखो प्रातः कालीन श्रम करता हूँ। इस माता पृथ्वी के गर्भ में वसुन्धरा में परिणत हो करके। मानो देखो उसके अन्न की उत्पत्ति होती है। इस अन्न को पान करता हूँ। और उसको पान करके सतोगुणी अन्न को पान करके मैं राष्ट्र का कार्य कलाप करता हूँ। मानो क्रिया कर्म करता हूँ। जिससे मेरा राष्ट्र इस ऊर्ध्वा में गति करता रहता है। मेरे प्यारे! देखो, महाराजा ज्ञानश्रुति ने जब यह वाक्य प्रकट किया तो महऋष प्रह्वाण ने कहा धन्य हैं हे राजन! तुम्हारा राष्ट्र मुझे बहुत प्रियतम मानो तुम्हारा राष्ट्र तो मुझे बहुत प्रियता में दृष्टिपात् आ रहा है।

सु राज्य

मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने प्रातःकालीन राष्ट्र में भ्रमण किया। मेरे प्यारे! महाराजा ज्ञानश्रुति और मुनिवरो! देखो, ऋषिवर उसके राष्ट्र में भ्रमण करने लगे बेटा! प्रत्येक गृह में से सुगन्धि आ रही है, प्रत्येक गृह सुगन्धित बना हुआ है। मानो देखो प्रत्येक गृह में प्रातःकालीन देव पूजा होती है। मानो देखो, उससे पूर्व प्रातःकालीन तो प्रत्येक गृह से वैदिक ध्वनि का प्रसार हो रहा है। मानो देखो, विवेकी पुरुष विवेक में गान गा रहे हैं प्रत्येक माता अपना गान गा रही है। वैदिक ध्वनियों के द्वारा गृह को पवित्र बनाया जा रहा है। मानो देखो उन गृहों में से जो शब्दों की ध्वनिया। मानो ध्वनित हो रही थी उससे ये वायु मण्डल बेटा राष्ट्र की प्रतिभा का महानता में जन्म होता रहता है। विचार-विनिमय क्या राजा ने महर्षि-प्रह्वाण से कहा ''कहो भगवन! मेरा राष्ट्र आपको कैसा लगा। उन्होंने कहा ''ऋषिवर तुम्हारा राष्ट्र प्रियतम है। परन्तु उस माता को धन्य है। जिस माता के गर्भ स्थल से तुम्हारा जन्म हुआ।

तो बेटा! उच्चारण करने का अभिशाप यह कि मेरे प्यारे! महाराज ज्ञानश्रुति और महर्षि प्रह्वाण अपने आसन को चले गये। ऋषियों ने घोषणा कर दी कि महाराज ज्ञानश्रुति की परीक्षा लेना व्यर्थ है। वे महान और पवित्र है। मेरे प्यारे वहीं मानव देखो ''स्वस्तं ब्रह्मः'' यह तो माता की गाथा गा रही है।......अश्रोव्य।

आध्यात्मिक वेत्ता

मेरे प्यारे! देखो, वास्तव में तो यह आत्मा है। परन्तु देखो बाह्य जगत् सूर्य प्रकाशक हैं चन्द्रमा प्रकाशक है, अग्नि प्रकाशक हैं शब्द प्रकाशक है। मेरे प्यारे! जब यह मानो ओझल हो जाते हैं तो इस शरीर में विद्यमान होने वाली जो चेतना है वहीं प्रकाश का मूलक बन करके रह जाती है। तो मेरे प्यारे! प्रभु ने, रचनाकार ने बेटा! किस प्रकार यह रचना रची है। मानो देखो, सर्वत्र भौतिक विज्ञान को पार करने के पश्चात् ही मानव अपनी आत्मा का चिन्तन करने लगता है। वह आध्यात्मिकवेत्ता बन जाता। वहां मृत्यु नहीं रहती, वहां अन्धकार नहीं रहता। प्रकाश में मानव चला जाता है। मेरे पुत्रो! मेरे प्यारे प्रभु का यह अनुपम जगत् है। मानव इसके ऊपर जब चिन्तन करने लगता है। तो मुनिवरो! देखो, मानव गम्भीर मुद्रा में हो करके देखो, अपने में महानता की कल्पना करने लगता है।

आओ मेरे प्यारे! ऋषि कहता है, वेद का मन्त्र कहता है कि परमपिता परमात्मा की गाथा गाने वाला वेद मन्त्र, वेद प्रकाश को कहते हैं, वेद ज्ञान को कहते हैं। बेटा! वेद पोथियों को नहीं कहते वेद मानो ज्ञान को कहते हैं जो बुद्धि को उपलब्ध हो जाता। हृदय से उसका समन्वय रहता है। मेरे प्यारे! देखो, हृदय से अंकुर का जन्म हुआ है। बाल्य जगत् में उसका वृक्ष बना रहता है उसका संक्षिप्त रूप बेटा! विशालता में परिणत हो जाता है।

परमात्मा का हृदय

मेरे प्यारे वहीं अंकुर हृदय में रहता है। परमात्मा के हृदय में रहता है। परमात्मा का हृदय क्या ? बेटा! जितना ज्ञान है वह परमात्मा का हृदय है। मेरे प्यारे! देखो, वह हृदयी सूत्र बना है। एक लोक को दूसरे लोक तक ज्योति देने वाला वह एक मण्डल से दूसरे मण्डल को ज्योति दे रहा है। वह मानो देखो, परमात्मा सूत्र बन करके क्रिया कलाप कर रहा है। माता के जीवन से बेटा! संसार का समन्वय रहता है। विनिमय क्या ? विचार-विनिमय बेटा! मैं भयंकर वन में चला गया हूँ।

मानो देखो यह भयंकर वन में जाने के पश्चात् मुझे मार्ग प्राप्त नहीं हो रहा है विचार-विनिमय क्या ? जब मैं यह विचार रहा हूँ। क्या यह संसार एक आभा में गति कर रहा है। मानवीय मानवता की गाथा गा रहा है। तो मेरे पुत्रो! प्रत्येक वेद मन्त्र ब्रह्म की गाथा गा रहा है। कैसे गा रहा है। वेद कहता है। समौ ब्रह्मः .... वेदाः प्रकाशः वेदाः लोकाः वेदाः अमृताः।

मेरे प्यारे! वेद अमृत को पान कराने वाला है। वह अमृतमय कहलाता है। परन्तु देखो, वेद प्रकाश बन करके उसकी गाथा गाता रहता है। कैसे गाता है ? मेरे प्यारे! लोकों का सूत्र बना हुआ है। लोकों में सूत्र रूप से रहता है। निर्माण करने वाला मानो सन्निधान मात्र से और परमाणुओं में गति हुई और परमाणुओं की गति से उनका अपना-अपना स्वभाव जागृत हो जाता है। केवल संन्निधान मात्र से बेटा, इस सृष्टि की रचना हुई।............अनुपलब्ध रासना, मेरठ।

४ शब्द विज्ञान एवं प्रकाश विज्ञान 10 02 1984

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भा।ति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेद-वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा महिमावादी हैं वे प्रत्येक अणु और परमाणु में विद्यमान हैं। उसी की प्रतिभा, उसी की महानता हमारे इस मानवीय जीवन में दृष्टिपात आती रहती है। भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान, दोनों प्रकार के विज्ञान के ऊपर हमारे ऋषि मुनियों ने बहुत गम्भीरता से अध्ययन किया। अपने अपने विचार व्यक्त करते हुए आदि ऋषियों ने बेटा! उस परमपिता परमात्मा को विज्ञानमयी माना है क्योंकि विज्ञान उसका आयतन माना गया है। वह उसमें विद्यमान रहता है तो इसीलिए जितना भी परमाणुवाद है उसमें वह एक सूत्र पिरोया हुआ है।

मेघावी

जिस प्रकार बेटा! एक माला होती है और माला में भिन्न-भिन्न प्रकार के मनके होते हैं और उनका एक सूत्र होता है तो धागे का, और सूत्र का समन्वय होने से वह माला कहलाती हैं इसी प्रकार प्रत्येक वेद का मन्त्र एक मनके की तरह दृढ़ है और उसमें ज्ञान और विज्ञान है ब्रह्मसूत्र से प्रत्येक वेद मन्त्र पिरोया हुआ है तो वो माला की तरह दृढ़ कहलाता है। तो जो उस माला को धारण कर लेता है, जो मानव उसको कण्ठ में सजातीय बना लेता है वो मेघावी कहलाता है, वह ओजस्त्व कहलाता है। और जो उसमें परमाणुवाद, विद्या विद्यमान है, अणु और परमाणुवाद को जानने वाला वैज्ञानिक बन जाता है। और जो इस परमाणु के रहस्यों को जान करके इनका साकल्य बना करके अपने को ब्रह्मवर्चोसि बना लेता है अपने ब्रह्म में संलग्न हो जाता है तो मुनिवरो! देखो, वो ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। तो विचार विनिमय क्या ? हमें ये विचारना है कि हमारा वेद-मन्त्र हमें किस मार्ग के लिये प्रेरणा दे रहा है क्योंकि प्रत्येक प्राणी संसार में प्रेरणा का स्रोत है। वो प्रेरणा पाता रहता है, अपने को महान बनाता रहता है। परम्परागतों से ये सिद्धान्त हमारे यहां प्रायः चला आ रहा है।

विष्णु

आओ मुनिवरो! देखो, आज मैं विशेष विवेचना ने देता हुआ आज का हमारा वेद मन्त्र क्या कह रहा था? हमारे प्रारम्भ के वेद मन्त्र में विष्णु शब्द आ रहा था, जो पालन करने वाला है, वैदिक साहित्य में उसके भिन्न-भिन्न प्रकार के पर्यायवाची शब्दों की विवेचना होती रहती है। परन्तु केवल रूप में जो पालन करने वाला है वो विष्णु कहलाता है। हे विष्णु! तू हमारी अन्तरात्मा में विद्यमान है, तू हमारा पालन कर रहा है हम मानव नमन हो करके तेरी आराधना कर रहे हैं। हम आराधना के जब निकटतम पहु।च जाते हैं तो हमारा मानवीयत्व ऊ।चा बन जाता है। तो मेरे पुत्रो! देखो, वो परमपिता परमात्मा पालन करने वाला है। परन्तु अब बेटा! तुम्हें वेद मन्त्र की विशेष आभा में नहीं ले जाना चाहता हू। हमारे जो ऋषि मुनियों के अनुपम जो विचार हैं अथवा एक-एक वेद मन्त्र के ऊपर उनका अध्ययन होता रहा है इस प्रकार उनमें जाने का प्रयास करते रहे हैं। दोनों प्रकार के विज्ञान में रत होने के लिये मेरे पुत्रो! एकान्त में विद्यमान हो करके अपने-अपने विचार व्यक्त करते रहते हैं। परन्तु जब हम ये विचारते हैं कि हमारा मानवीयत्व कौन से सूत्र में पिरोया हुआ है हम उस सूत्र को जानने के लिये तत्पर रहते हैं।

याग

आओ मेरे प्यारे! आज उन ऋषि-मुनियों की विचारधाराओं में ले जाने के लिये आया हूं, जहां महर्षि वैशम्पायन आदि ऋषिवर अपने अपने विचार ब्रह्म के सम्बन्ध में, ज्ञान और विज्ञान के सम्बन्ध में, उनकी उड़ानें उड़ती रहती हैं। क्योंकि हमारे यहां परमपिता परमात्मा जहां विज्ञानमयी स्वरूप भी हैं वहां यज्ञमयी स्वरूप भी माना गया है क्योंकि जितना भी संसार का शुभ कर्म, आत्मीय कर्म है, वो सर्वत्र याग कहलाता है। जितने भी महान कर्म हैं, आत्मा से सम्बन्धित हैं, जिनसे हृदय प्रसन्न होता है। अन्तःहृदय में संस्कार ऊर्ध्वा में गति करने लगते हैं, उन सर्वत्र का नाम एक याग कहलाता है। आज मैं याग के सम्बन्ध में विशेष विवेचना नहीं देने आया हूँ। केवल यह कि हमारे ऋषि-मुनियों ने बेटा! इसके ऊपर अध्ययन करते-करते मानो अग्नि के ऊपर दहन, उसका चयन करते-करते अन्तरिक्ष में पहुंचे। उन्होंने नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों की गणनाएं की हैं। नाना प्रकार की निहारिकाओं में पहुंच गये हैं, एक-एक निहारिका के सूर्यों की गणना करने लगे हैं तो उसमें बेटा! अनन्त हो करके वे मौन हो गये हैं। अनन्तमयी दृष्टिपात होने वाला जो ये अमूल्य जगत् है इसको जानकर के मानव मौन हो जाता है।

सूर्य विज्ञान

तो आओ मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूं, जहां महर्षि उद्दालक गोत्रीय ऋषि के आश्रय में कुछ अतिथि पधारे। उन्होंने सेवा की और अतिथियों का स्वागत किया और याग कर्म करने के पश्चात् ऋषि मुनियों ने बेटा! वहां से गमन किया और भ्रमण करते हुए वे गाडीवान रेवक मुनि के आश्रम में पहुंचे। रेवक मुनि महाराज ने ऋषि मुनियां का बड़ा स्वागत किया, उनको आसन दिये। उनमें कुछ ब्रह्मचारी थे, कुछ ब्रह्मश्रोत्रीय ब्रह्मचारी थे, कुछ ब्रह्मवेत्ता थे तो इस प्रकार के उनके भिन्न-भिन्न आसन विद्यमान हो गये। आसनों पर मुनिवरो! देखो, अपना चयन करने लगे। गाडीवान रेवक मुनि महाराज विज्ञान के ऊपर, अग्नि के ऊपर अपना अध्ययन करते रहते थे। द्यौ से सूर्य कैसे प्रकाश ले करके अपनी ऊर्जा को पृथ्वी को प्रदान कर

देता है। प्राणी मात्र को अपनी ऊर्जा दे करके वो शक्तिशाली बनाता रहता है। नाना प्रकार की ऊर्जा वनस्पतियों को प्रदान करता हुआ उनमें भिन्न-भिन्न प्रकार के गुणों का आदान-प्रदान हो जाता है इस प्रकार का अध्ययन ऋषि-मुनियां के मध्य में प्रारम्भ हो रहा है। गाडीवान रेवक मुनि महाराज ने ऋषि मुनियों से कहा कि तुम्हें कोई शंका हो तो उसका समाधान किया जा सकता है। क्योंकि ऋषि मुनियों का ये ही अभिमत है अपनी आभाओं में अपनी शंकाओं का निवारण करना है अपने हृदय में, जो साधना में सूक्ष्मत्व है उसके ऊपर अध्ययन करना है। इसके ऊपर ऋषि मुनियों ने अपना-अपना मन्तव्य देना प्रारम्भ किया।

भौतिक एवं आध्यात्मिक विज्ञान

उन्होंने कहा प्रभु! ये जो शब्द विज्ञान अथवा ये जो प्रकाश विज्ञान है हम इसको जानना चाहते हैं, क्योंकि हमारे यहां दो प्रकार के विज्ञान की प्रतिभा हमारे हृदयों में प्रवेश होती रही है, हम दोनों प्रकार के विज्ञान में जाना चाहते हैं, एक भौतिक विज्ञान है और एक आध्यात्मिक विज्ञान कहलाता है। परन्तु दोनों प्रकार के विज्ञान में क्या-क्या सूक्ष्मतम है? तो मुनिवरो! देखो, महर्षि गाडीवान रेवक मुनि ने अपने अनुभव के आधार पर ये कहा कि मेरे विचार में यह आता है कि जहां यह भौतिक विज्ञान, परमाणु विज्ञान का समापन होता है वहां से आध्यात्मिकवाद का प्रारम्भ होता है। ऋषियों ने कहा कि प्रभु! उसका हमें निर्णय कराइये। हम इसका साक्षात्कार या केवल आपके वाक्यों पर विश्वास कर लिया जाये।

द्रव्य पद्धति

मुनिवरो! गाडीवान रेवक मुनि महाराज ने कहा-कि नहीं, इसके ऊपर विचार होना चाहिये। ये कैसे सिद्ध हो

कि आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता क्या चाहता है ? भौतिक विज्ञानवेत्ता क्या चाहता है ? तो गाडीवान रेवक ने कहा कि भौतिक विज्ञान तो ये चाहता है कि मैं अणुओं और परमाणुओं को जान करके, अग्नि विद्या और नाना प्रकार की विद्याओं को जान करके उस परमाणुवाद को मैं एकत्रित करके भौतिक विज्ञान में दृष्टिपात आने वाला ये अनुपम जगत् है ये सूक्ष्मता में भी और स्थूलता में भी दोनों में सिद्ध हो जाता है। और हम अपने राष्ट्र की पद्धति को जो द्रव्य पद्धति कहलाती है, हम द्रव्य पद्धति को जान करके इसका सदुपयोग कर सकते हैं। परन्तु यह तो भौतिक विज्ञान कहलाता है और आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता यह चाहता है कि संसार में प्रत्येक मानव मृत्यु को नहीं चाहता। प्रत्येक प्राणी के हृदय में ये आशध लगी रहती है कि मेरी मृत्यु नहीं होनी चाहिये। मैं मृत्युंजय बनना चाहता हूं, मैं मृत्यु से पार होना चाहता हूं। तो वह मृत्यु से कैसे पार हो? मृत्यु को कैसे जाने? जिसके संस्कार अन्धकारमय हों, प्राणी मात्र के हृदय में अन्धकार हैं राष्ट्र की पद्धति भी जो अन्धकार है वो अन्धकार भी न रहे प्रत्येक मानव प्रकाश में कर्म करने वाले हों और मृत्युंजय बन जायें। तो आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता मृत्यु से पार होना चाहता है।

मेरे प्यारे ! देखो, यह दो प्रकार का विज्ञान हमारे यहां परम्परागतों से ही माना गया है। परन्तु उन्होंने कहा यदि आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करना चाहते हैं तो भौतिक विज्ञान के मार्ग से होकर ही हम आध्यात्मिकवाद में प्रवेश कर सकते हैं। और यदि हमने भौतिकवाद को नहीं जाना है, भौतिक विज्ञान को नहीं जाना है, तरंगवाद को नहीं जाना है। उसको क्रियात्मक नहीं बनाया है तो हम मृत्यु को विजय नहीं कर सकते। तो मुनिवरो! देखो, ये विचार महऋष गाडीवान रेवक मुनि महाराज का रहां इसमें महऋष प्रह्वाण इत्यादि ऋषियों ने उनसे ये प्रश्न किया कि महाराज हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि हमारे ये जो नेत्र हैं इसका ज्योतिर्मयलिंग कौन है ? इसको कौन ज्योति देने वाला है ? तो ऋषि ने कहा कि इनको प्रकाश देने वाला यह सूर्य है। प्रातःकाल में उदय होता है, प्रकाश देता रहता है, प्रकाश का द्योतक बना हुआ है, ऊर्जा को ले करके आता है, वनस्पतियों को तपाता रहता है नाना प्रकार की विद्याओं को जानने वाले इसके प्रकाश में विद्या का अध्ययन करते रहते हैं। कोई मानव आयु के वेद को जानना चाहता है तो वो नाना प्रकार की वनस्पतियों में रत हो जाता है। उससे जीवन शक्ति को अपने में गृहण करने लगता है परन्तु वही वनस्पति विज्ञान में रत हो करके उनका पिपाद बना करके अपने जीवन का सन्धिकाल बनाने लगता है वह अपनेपन को जानने के लिये, वह उस महान ज्योति को जानने के लिये तत्पर हो जाता है।

गऊ की विशेषता

हमारे आचार्यों ने गौ नाम के पशु की बड़ी प्रशंसा की है वास्तव में प्रत्येक प्राणी की प्रशंसा वैदिक साहित्य में आती रहती है परन्तु देखो विशेष कर हमारे यहां गौ नाम के पशु की बड़ी विशेषता आती रहती है, क्योंकि जैसे प्रत्येक धातुओं का निर्माण वसुन्धरा के गर्भ में होता है, परन्तु एक स्वर्ण धातु का निर्माण होता है वह स्वर्ण अपने स्थान पर अद्वितीय धातु मानी जाती है। इसी प्रकार जितने भी पशु हैं भिन्न-भिन्न प्रकार के पशु हैं परन्तु गौ नाम के पशु की महान प्रशंसा की है। उनकी प्रशंसा क्यों की है ? मेरे पुत्रो! देखो, ऋषि मुनि एक समय अध्ययन करने के लिये तत्पर हो गये क्रियात्मक पशुओं के जीवन में विचारने लगे कि इस पशु में कौन-सा गुण है जो इस प्रकार की प्रशंसा करते हैं विचारते-विचारते वही सूर्य की किरणें मुनिवरो! ''अस्वानं वन्दे देवोः ब्रह्माः'' मानो देखो, सूर्य की किरणों के ऊपर अध्ययन करने लगे। एक वैष्णव नाम की किरण कहलाती है, एक 'इन्द्रगोतिक' नाम की किरण कहलाती है, ये भिन्न-भिन्न प्रकार की किरणों का समावेश पृथ्वी के ऊपर आता रहता है कोई धातु किसी प्रकार का क्रियाकलाप करती रहती है। आज मैं तुम्हें व्याख्या नहीं दूंगा केवल परिचय देने के लिये आया हूं। और वो

परिचय यह कि सूर्य की किरणों में स्वर्ण नाम की किरण होती है जो स्वर्ण के परमाणुओं को आदान-प्रदान करती रहती है। एक सूर्य की किरण ऊर्ध्वा में गति करती हुई सुमेरकेतु नाम की एक किरण होती है जो कि परमाणुओं में गति का संचार करती है। उसके सूक्ष्मतम रहस्य को यदि और जानते हैं तो एक अणु है अणु के मध्य में देखो उसके अन्तर्गत अरबों-खरबों परमाणु गति करते रहते हैं। जैसे एक सूर्य के अन्तर्गत नाना पृथ्विया। गति करती रहती हैं। इसी प्रकार ''प्रमाणम् ब्रह्मी वृत्ताः'' नाम की एक किरण होती है उस किरण का समावेश गौ नाम के पशु पर होता है। जैसे पृथ्वी के गर्भ में वह किरण जाती है, स्वर्ण की धातु का निर्माण करती है। इसी प्रकार जब वही किरण गौ नाम के पशु के द्वार पर जाती है मानो रीढ़ के विभाग में जाती है तो रीढ़ के विभाग के साथ एक स्वर्णकेतु नाम की नाड़ी होती है उस नाड़ी का सम्बन्ध जैसे सूर्य उदय हुआ उसका ऊर्ध्वा मुख हो जाता है। सूर्य की किरण को वह नाड़ी अपने में सिंचन करने लगती है अपने में धारण करने लगती है और जब वो धारण करती है तो परमाणु उस गौ नाम के शरीर में प्रवेश करते हैं। तो मुनिवरो! ऐसा प्रतिस्मरण आया है ऋषि मुनियों के हृदयों में, कि यह जो यत्र है, ''दुखदामब्रह्मवादी'' उसमें जब उन परमाणुओं का मन्थन होता है वे दुग्ध देते हैं तो उसके दुग्ध में पीत वर्ण होता है। पीत वर्ण का अभिप्राय ये है कि उसमें स्वर्ण की मात्रा विशेष होती है। तो मुनिवरो! देखो, आयुर्वेद-आचार्यों ने इस गौ नाम के पशु की बहुत प्रशंसा की है।

गऊ की उपयोगिता

हमारे यहां परम्परागतों से ही मुझे स्मरण आता रहा है। राजाओं के यहां जब ब्रह्म का कोई उपदेश देता था तो राजा द्वारा उसे कामधेनु नाम उच्चारण करके बेटा! दुग्ध देने वाले गौ को प्रदान किया जाता था। कि इसके दुग्ध को पान करने से तुम्हारी बुद्धि में महानता आ जायेगी। इस प्रकार का क्रियाकलाप परम्परागतों से रहा है। यह जो सूर्य है, यह प्रकाश का द्यौतक है, प्रकाश को देने वाला है। माता अपने प्यारे पुत्रों को जागरूक कर देती है प्रातःकालीन होते ही। हे बाल्य! जागरूक हो जाओ देखो, सूर्य उदय हो गया है ये प्रकाशक आ गया है ये प्रकाश के देने वाला है इस प्रकाश को धारण करके तुम अपने क्रियाकलापों से रत हो जाओ। इस प्रकार माता अपने पुत्रों को प्रेरणा देती है। प्रत्येक प्राणी अपने-अपने क्रियाकलापों में संलग्न हो जाता है। तो ये सूर्य का प्रकाश मानो देखो, प्रकाश कहलाता है।

प्रकाश विज्ञान

मेरे पुत्रो! देखो, यह सूक्ष्म सी विवेचना ऋषि के कथन की तो ऋषियों ने पुनः उनसे प्रश्न किया कि महाराज इसको तो हम जानते हैं। कि सूर्य नेत्रों का देवता है परन्तु जब यह सूर्य नहीं होता तो नेत्रों को कौन प्रकाशित करता है ? कौन प्रकाश को देने वाला है ? उस समय ऋषि ने कहा कि जब यह सूर्य नहीं होता तो यही प्रकाश, चन्द्रमा का धीमा प्रकाश मानव को प्रकाश देने लगता है। उससे प्रकाशित जो जाता है वही प्रकाश अनुपम कहलाता है वह अमृत को बहाने वाला है जैसा मैंने पूर्वकाल में तुम्हें विवेचना प्रकट की थी परन्तु आज मैं पुनः से प्रकट कर रहा हूँ। यह अमृत बहाया जा रहा है ? यह अमृत कैसे बहाया जा रहा है ? धीमा प्रकाश आता है, वह अमृत को लेकर के आता है जब कृषक पृथ्वी के गर्भ में बीज की स्थापना कर देता है तो उसका अमृत बहाया जाता है। पृथ्वी उपजने लगती है, महान बन जाती है। कृषक प्रसन्न हो रहा है, आनन्दित हो रहा है। जब माता के गर्भ स्थल में हम जैसे शिशु होते हैं तो माता के गर्भ में अमृत बहाया जा रहा है, तो माता नहीं जानती कि अमृत को कैसे बहाया जा रहा है। वेद का ऋषि कहता है कि माता की रचना के निचले विभाग में एक चन्द्रकेतु नाम की नाड़ी होती है उस नाड़ी का सम्बन्ध माता की पुराततनाम की नाड़ी से होता है। 'पुराතत' नाम की नाड़ी का सम्बन्ध

'द्युतिका' नाम की नाड़ी से होता है और 'द्युतिका' नाम की नाड़ी का सम्बन्ध माता की लोरियों से होता है। और लोरियों से पंचम् नाड़ी चलती है। माता की नाभि से उन नाड़ियों का समन्वय होता हुआ शिशु की नाभि से सम्बन्ध होता है, तो बेटा! अमृत को बहाया जा रहा है मानो प्रभावी गति कर रहा है। अमृत को बहाने वाला कौन है, वह चन्द्रमा है। वह देवत्व कहलाता है। देव की आभा में गति करने वाला है। मुनिवरो! देखो, वह 'अमृतो ब्रह्मस्तुते धर्मेस्तवः' पूर्णिमा के दिवस अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त है। .....अश्रोव्य।

पूज्य महानन्द जीः

आत्मघाती मानव

...गुरुदेव यही निर्णय देना चाहता हूँ। कि आधुनिक काल का जो विज्ञान है। ये भिन्न-भिन्न प्रकार का श्राप देकर के प्राणियों को नष्ट करना चाहता है। इसके आत्मबल को नष्ट करना चाहता है। मानव को यह श्राप दे रहा है तेरी मृत्यु हो जाये। तो विज्ञान के ऐसे-ऐसे यन्त्रों का निर्माण हो गया है कि वायु मण्डल में त्यागते ही प्राणी नष्ट हो जायेगा। परन्तु देखो, इसका यह अभिप्राय नहीं कि मानव का आत्मबल उसके प्रहार करने से पूर्व आत्म बल को नष्ट कर दिया जाये परन्तु देखो, आधुनिक काल का प्राणी एक-दूसरे को त्रास देकर उसके आत्म बल को नष्ट कर रहा है। ये नष्ट नहीं करना चाहिये।

पामरकर्म

पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा ''यागां ब्रह्मवाचो देवा'' कि इस प्राणी को याग करना चाहिये। शुद्ध कर्मों में अपनी संलग्नता रहनी चाहिये परन्तु देखो, उसको शुभ चिन्तन, मनोनीत चिन्तन से ही उसका चिन्तनीय विषय बनाया जाय ये मानो देखो राष्ट्र का, समाज का दुर्भाग्य होता है कि मानो देखो, मोहम्मद के मानने वालों का एक वर्ष में एक दिवस आता है। उनके प्रत्येक गृह में मानव के रक्तों की एक नदी के तुल्य रक्त बहने लगता है। क्या मैं इस वाक्य को स्वीकार, क्या यह पामरकर्म नहीं है। यह मानवीय कर्म नहीं कहा जा सकता इस कर्म को हमारे यहां पामरकर्म कहा जाता है। जब मानो देखो, बलि देना है। अरे भोले प्राणियों तुम अपनी इन्द्रियों की बलि क्यों नहीं प्रदान करते।

बलि का अभिप्राय

पूज्यपाद गुरुदेव से मैंने एक समय प्रश्न किया था कि यहां वाजपेयी याग का जब चलन हुआ महाभारत काल के पश्चात तो वाजपेयी यागों में बैल की बलि का वर्णन आया परन्तु बलि का वर्णन ये हुआ ''सम्भवतिः ब्रह्मवाचाः'' उसमें एक वर्णन आया कि बत्रासुर इत्यादियों को देखो, वृष्टि याग सम्पन्न हुआ तो वहां काले हिरन का वर्णन आता है। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने व्याख्या की कि याग को मानो काला हिरन ले गया अब उसने उसे वत्रासुर को प्रदान कर दिया और वत्रासुर ने मानो उसकी वृष्टि कर दी और वृष्टि करते ही देखो, वहां बैल की बलि का वर्णन आता है। गऊ के बछड़े की बलि का वर्णन आता है। परन्तु देखो, बलि के वर्णन को इस प्राणी ने जाना नहीं अज्ञानता के कारण नहीं जाना।

देखो, हमारे यहां काला हिरन कहते हैं धूम्र को और जब यह धूम्र मेघों में परिणत हो गया उस याग के परमाणुओं का नाम हमारे यहां हिरन कहा जाता है। और इस परमाणु को लेकर के देखो, वत्रासुर नाम मेघों का है। जब वह मेघों को प्रदान किया गया मेघों ने उसकी पृथ्वी पर वृष्टि कर दी। जब वृष्टि हुई तो गऊ के बछड़ों ने मानो देखो, पृथ्वी पर उसकी चमड़ी को वृत्त करते हुए उसमें बीज की स्थापना की वहां देखो परिश्रम करने का नाम बैल की बलि का वर्णन माना गया है। परन्तु देखो, इस प्रकार जब साहित्यों में भ्रष्टता आ गयी तो इसको

मानव अज्ञानता के कारण नहीं जान पाता मैं तो यही कहूंगा।

यज्ञ रूप संसार

आज मैं विवरण नहीं देना चाहता हूँ। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह वाक्य वर्णन कराने आया हू। कि यहां प्रत्येक याग में हिंसा की प्रवृत्ति आ गयी है। हिंसा की प्रवृत्ति, कहां से मानव के ऐसे विचार आये। परन्तु ये हम प्राणियों का सौभाग्य है कि वह अहिंसा में परिणत करते हुए यागों का चलन लेकर चले आये हैं। परन्तु ये भी परम्परागतों से मानवों के हृदयों में प्रवेष कर रही है। और वे हृदय को प्रभावित करती हुई अपने में वह परिणत होती हुई विचार धाराए। यहां तक चली आयी कि प्रत्येक मानव का याग ही कर्म है। वो याग चाहे आध्यात्मिक याग हो, चाहे वह भौतिक याग हो, चाहे वह सुगन्धि अग्नि का याग हो, चाहे आत्मा में, हृदय में अग्नि, देखा इन्द्रियों में साकल्य का याग हो वे सर्वत्र देखो, यह संसार यज्ञ रूप माना गया है। परमपिता परमात्मा ने सष्टि के प्रारम्भ में यज्ञ रूपी यह ब्रह्माण्ड की रचना की है जैसा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कहा कहते हैं कि यह जो संसार है यह एक यज्ञशाला है मानव का शरीर एक यज्ञशाला है मानव का गृह एक यज्ञशाला है मानव का मुखारविन्द मानो देखो, अग्नि में एक आहुति दे रहा है इस प्रकार की विचारधाराए। हमारे मानवीय मस्तिष्कों में आती रहती हैं।

रूढ़ियों से मानव जाति का विनाश

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा है कि समाज में रूढ़िया। नहीं रहनी चाहिये परन्तु देखो जब रूढ़िया। समाज में रहेंगी तो राष्ट्र ऊंचा नहीं बनेगा और राष्ट्र ऊंचा नहीं बनेगा, तो समाज भी ऊंचा नहीं बनेगा परन्तु यहां रूढ़ियों पर रूढ़िया। बनती चली जा रही हैं और वे रूढ़िया। कहां आक्रमण करती है। प्रभु की मान्यताओं पर आक्रमण करती हैं, उसके क्रियाकलापों में आक्रमण होता रहता है। सूक्ष्म विचारों पर आक्रमण होता रहा है। उस आक्रमण का परिणाम यह होता है, कि राष्ट्र में रूढ़िया। बन करके राष्ट्र का जीवन अस्वस्थ हो जाता है राष्ट्र में रक्तभरी क्रान्तियों का प्रचलन हो जाता है उसका परिणाम यह कि विज्ञान का दुरुपयोग हो रहा है। और विज्ञान के दुरुपयोग से कुछ काल रह रहा है जब यहां अग्नि के काण्डों में यह मानव परिणत हो जायेगा। आधुनिक जगत में एक मानव दूसरे प्राणी को नष्ट करके प्रसन्न हो रहा है परन्तु हे भोले प्राणी! तुझे जब कोई नष्ट करेगा, तो तू कितना प्रसन्न होगा उस समय तेरी जो परीक्षा है उसका ज्ञान तुझे हो जायेगा। तो जब यह प्रतिभा मेरे हृदय में परिणत होती हैं तो यहां धर्म और रूढ़ियों के ऊपर प्राणी-प्राणी को त्रांस दिया जा रहा है इसका दोषी राष्ट्र ही है, राष्ट्र एक प्रकार का दूषित बना हुआ है।

वायु मण्डल में दूषितता क्यो ? क्योंकि उसमें स्वार्थवाद है। स्वार्थवाद ही मानव को नष्ट कर रहा है यदि जैसा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कल के वाक्यों में कहा था कि मानव दूसरों के अधिकार को अपने में धारण यदि न करे तो मानव का जीवन मानो तटस्थ बन करके मानवीय क्षेत्र में परिणत होता रहेगा।

विभिन्न यागों का स्वरूप

देखो, आज का विचार-विनिमय क्या मैं इन वाक्यों में विशेष जाना नहीं चाहता हू। विचार यह है कि गोमेघ याग करना है तो वहां गऊओं की रक्षा होनी चाहिये। अश्वमेघ याग करना है तो राष्ट्र और प्रजा को ऊंचा बन करके राष्ट्र में हिंसा नहीं होनी चाहिये। परन्तु यदि घेनु याग करना है तो अपनी बुद्धियों को स्वतन्त्र देखो विद्या की रक्षा करनी है। यदि नरमेघ याग करना है तो नरों की, प्राणियों की रक्षा होनी चाहिये। यदि यहां वाजपेयी याग करना है तो गऊ के बछड़े की बलि न देकर पृथ्वी को उपयोग में लाना ही याग कहा जाता है। इसी प्रकार भिन्न प्रकार के देवी यागों में भी प्रायः ऐसा होता है। देवी याग को ऊंचा बनाना है, महान बनाना है।

प्रभु को बलि स्वीकार नहीं

प्रभु के लिये, देखो प्राणी को यदि अर्पित करना है तो अपने मन और प्राण को अर्पित कर दो, तो तुम प्रभु के भक्त बन जाओगे। इन यागों में तुम्हें परिणत रहना है। जैसे मोहम्मद के मानने वाले हैं परन्तु वह देखो बकरों की बलिया। देते रहते हैं, क्यों देते रहते हैं, जब यह पामर प्रवृत्ति तुम्हारी बन जायेगी तो प्रभु के भक्त केसे बनोगे क्योंकि प्रभु तो सर्वत्र एकोकीकरण है, उन प्राणियों में भी तो प्रभु है जिन प्राणियों की तुम बलि दे करके प्रभु को अर्पित करते हो। जब प्रभु को अर्पित करते हो कि मैंने यह बलि दे दी हैं प्रभु के नामोकरण पर, तो क्या प्रभु इसे स्वीकार करेंगे? और जब तुम अपनी कुरीतियों की बलि प्रदान करोगे तब प्रभु उन्हें स्वीकार करेंगे। इस प्रकार की विचार धाराए। प्रत्येक समाज में, राष्ट्र में आ जानी चाहिये जिससे समाज में एक मानवीयता का प्रसार, मानवीय दर्शन, मानव के समीप आ जाये।

आज मैं ऐसी कोई विचारधारा व्यक्त नहीं कर रहा हू। जिससे मानवता कटुता में आये, केवल मैं अपने विचार इसलिये व्यक्त कर रहा हू। कि हिंसा ही मानव की मृत्यु है और रक्षा ही मानव का जीवन है। रक्षा करौं रक्षा करने से जीवन का उत्थान होगा। तो आज मैं विचारधारा विशेष न प्रकट करता हुआ हे यजमान! मैं यजमान के आ।गन में जा रहा हूँ। हे यजमान तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, तेरे जीवन की प्रतिभा महानता में सदैव परिणत रहती रहे। मेरी यह सदैव कामना रहती है कि ब्राह्मण, वेद, अहिंसा को अपना करके अपनी मानवीयता को ऊ।चा बनाना यह तेरा कर्त्तव्य है। हे यजमान! तेरे जीवन का सदैव सौभाग्य अखण्ड बना रहे यह मेरी कामना है।

अहिंसा परमोधर्मः

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव का विशेष समय लेना नहीं चाहता हू। परन्तु देखो यहां भिन्न-भिन्न प्रकार के विचारों को मैं देने के लिये नहीं आया हूँ। केवल अपने विचार व्यक्त करना कि मानव का जीवन एक अहिंसा परमोधर्मी बनना चाहिये। यह आज का विचार अब मैं समाप्त करने जा रहा हूँ।

वायुमण्डल का शोधक, 'याग'

जहां तक यागों का चलन है कुछ ही काल रह रहा है जब संसार का वैज्ञानिक इस याग कर्म को अपनाने वाला है मुझे अभी-अभी यह प्रतीत हुआ है कि कुछ समय हुआ कि समुद्रों के तट पर वैज्ञानिकों की एक सभा एकत्रित हुई है उन वैज्ञानिकों की सभा में निर्णय हुआ है कि वायु का दूषण हो रहा है यह जो वायुमण्डल दूषित हो रहा है परन्तु इसका यह कुछ समय तक चलता रहा तो यह प्राणी श्वास की गति के साथ ही नष्ट हो सकता है। परन्तु देखो, अब उन वैज्ञानिकों का यह विचार है कि यह जो गौ नामक जो पशु है यह गौ नाम के पशु से उसके घृत में, दुग्ध में इस प्रकार के परमाणु हैं जो अग्नि में परिणत करने से ऐसे परमाणुओं का प्रादुर्भाव हो रहा है जो परमाणुवाद अशुद्ध परमाणुओं को निगलता हुआ शुद्ध वायुमण्डल को उत्पन्न कर सकता है। शुद्धता की प्रसारणता और अशुद्धता को नष्ट करना इन परमाणुओं का कर्त्तव्य है।

धृतोमयी श्रद्धा

यह परमाणु विद्या के ऊपर मैं विशेष विवेचना नहीं देता क्योंकि देखो, जितनी भी घृतोमयी श्रद्धा है, घृत है पूज्यपाद गुरुदेव ने इससे पूर्वकाल में घृत को श्रद्धा का नामोकरण कहा है कि घृतोमयी श्रद्धा मानो देखो घृत क्या है संसार में श्रद्धा है वह जो श्रद्धा है जिस श्रद्धा के परमाणु, आस्था के परमाणु जब मानव के मुखारबिन्द से गृह में प्रवेश होते हैं तो वह गृह पवित्र बन जाता है वायु मण्डल में पवित्रता आ जाती है और जब विचारों में पवित्रता

नहीं रहती उनमें सतोगुण नहीं रहता, उसमें तमोगुण और रजोगुण छा जाता है, विडम्बना छा जाती है तो वायुमण्डल में अशुद्धियां छा जाती हैं। गृहों में अशुद्धियां आ जाती है।

प्रदूषण में योग सिद्धि असम्भव

मुझे स्मरण आता रहता है कि जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव की शरण में पहुंचा था किसी काल में। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने लगभग माह तक वाजपेयी याग किया था। माह तक वाजपेयी याग करके वायु मण्डल जब पवित्र हो गया तो उसके पश्चात् योग साधना में हमें परिणत कराया। योग साधना में परिणत कौन होता है? वहां योग साधना सिद्ध होती है जहां वायु मण्डल पवित्र होता है। जहां वायुमण्डल में एक दूसरे को नष्ट करने की प्रवृत्तियां रहती हैं। ऐसे विचार का गृहों में प्रवेश रहता हैं। तो वहां देखो योगसिद्धि नहीं हो पाती।

पवित्र वायुमण्डल ही योगसिद्धि में सहायक

हमारे ऋषि मुनि योग सिद्ध आत्माए। परम्परागतों से सिद्धियों में रमण करते रहते हैं। मुझे स्मरण आता है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह प्रकट कराया था कि एस समय महर्षि रोहिणीकेतु ऋषि महाराज जो मानो देखो रोहिणीकेतु अगस्त्य मुनि महाराज के महापिता थे रोहिणीकेतु ऋषि महाराज जब अपनी पत्नी से बोले कि ''हे देवी हम याग करने के लिये चलेगे। तो उन्होंने कहा-महाराज! आपको याग करना है या साधना करनी है। उन्होंने कहा-साधना और याग का एक ही मन्तव्य है। सबसे प्रथम याग है। याग से वायु मण्डल को पवित्र बनाना है। चित्रों को दृष्टिपात करना है। उसके पश्चात् हम लोग निश्चिन्त होते हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी च्यवन ऋषि की चर्चाए। की। महर्षि च्यवन ऋषि महाराज का नेत्र उपणित हो गया तो उसी समय देखो अश्वनि कुमारो और प्रवणकेतु ऋषि मुनियों ने आकर उनकी आयु की कामना की। देखो, औषधि पिपात बनाया। औषधि पिपात क्या था ? देखो लगभग वर्षों तक तो कुछ औषधियां एकत्रित करके महर्षि च्यवन ऋषि यज्ञ में, अग्नि में आहुति देते रहे जिससे परमाणु उनके श्वास के द्वारा जा करके उनके शरीर में एक पौष्टिकता आ जाये। वह परमाणु श्वास के साथ में गति करता है तो अशुद्ध परमाणु नष्ट हो जाते हैं। शुद्ध परमाणुओं का जन्म हो जाता है वायुमण्डल पवित्र हो जाता है उससे योगाभ्यास, प्राण की प्रतिभा शुद्ध रूप में ऊर्ध्वा में गति करती हुई उसकी अन्तरात्मा पवित्र बन जाती है तो इस प्रकार मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे यह प्रकट कराया था उसमें मैं विशेष विवेचना न देता हुआ उसी कारण ऋषिवर ने भयध्र वनों में जाकर याग किया अपने को शुद्ध और वायुमण्डल को पवित्र किया और उसके पश्चात् वह योगसिद्ध होने लगे। हमारे यहां सबसे प्रथम अहिंसा के कर्म को अपनाना है। उसके पश्चात् उससे अपनी इन्द्रियों को पवित्र बनाना है। हिंसा का जो प्रारम्भ होता है, वह प्रायः इन्द्रियों से प्रारम्भ हुआ करता है। जब इन्द्रियां अहिंसा परमोधर्मी बन जाती हैं तो मानव के अन्तर्हृदय में पालन करने की प्रवृत्तियां हो जाती हैं। आन्तरिक पालन करने की प्रवृत्तियां जहां आई वहीं देखो ऊर्ध्वा में गति करने वाला अन्तःप्राण और मन की साधना करके प्रभु को प्राप्त हो जाता है। तो हे यजमान तेरे जीवन को सौभाग्य अखण्ड बना रहे ये मेरी सदैव कामना रहती है अब मैं अपने विचारों को समाप्त कर रहा हूं। अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा मांगता हूँ।

पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने बहुत विशुद्ध विचारों को प्रकट किया क्योंकि यह परम्परागतों से ही मानो अपने विचार एक विडम्बनामयी में देते हैं........ शेष अनुपलब्ध जवाहर नगर दिल्ली

५ कर्म काण्ड व्याख्या 26 10 1986

जीते रहो! देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मंत्रों का गुण-गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमनें पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद-वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुण-गान गाया जाता है। जो संसार का नियन्ता है अथवा निर्माण करने वाला है और पाप-पुण्य कर्मों का जो फल देने वाला है, जो इस संसार का संहार कर देता है। ऐसा जो मेरा प्यारा प्रभु है मानो उसकी महिमा का गुण-गान हमें गाना है, क्योंकि वे सर्वव्यापी है, एक-एक कण-कण में व्याप्त होने वाले है, एक-एक अणु में जिसकी प्रतिभा भास रही है मानो वह अनुपम देव जो संसार की प्रतिभा में सदैव निहित रहता है। उसका गुण गाना चाहिए।

परमात्मा का आयतन

आज का हमारा वेद मन्त्र उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुण-गान का रहा था अथवा उसके गुणों का वर्णन कर रहा था, उसके गुणों की प्रतिभा प्राणी मात्र में बेटा समाहित हो रही है, चाहे वह तरंगों में प्राण गति करने वाला हो, चाहे वह मानवीय श्वास पर श्वास की प्रतिभा को, चाहे वह नाना प्रकार के वनस्पति विज्ञान में रत रहने वाला हो, उनमें रसों का आदान-प्रदान करने वाला हो। वह जो अनुपम है जो प्रत्येक के अर्न्तहृदय में विद्यमान रहता है, हम उस परमपिता परमात्मा की महत्ता जो अनुपम स्वरुप रहने वाला है, याग उसका आयतन माना गया है मानो विज्ञान उसका गृह और सदन माना गया है, ऐसा जो मेरा प्यार प्रभु है जो इस प्रकार का व्यापक स्वरूप एक अवृत कहलाता है, हम उस परमपिता परमात्मा की महिमा को अपने अर्न्तहृदय में चिन्तन का एक विषय बनाएं। नाना प्रकार का जो चिन्तन करता रहता है,और चिन्तन की जो अनुपम एक शैली है, जो मानव के हृदयों में निहित रहने वाली है। हे मानव! तू चिन्तनीय आभा को अपनाने का प्रयास कर। क्योंकि तुझे तो संसार में कुछ न कुछ विचारना है। यह जो मन है, यह प्रकृति के तन्तुओं को विचारता रहता है। मानों यह अपने गुणों में जाना चाहता है, क्योंकि जिससे जिस का निर्माण होता है वह उसी को प्राप्त होना चाहता है। जैसे यज्ञशाला में अग्नि विद्यमान है उसका मुख ऊर्ध्वा कहलाता है। क्योंकि उसका जो सखा है, वह द्यौ माना गया है मानो जो ऊर्ध्वा में वास कर रहा है, जो सूर्य की किरणों से समन्वय रहने वाला है, वह उसी में रत होना चाहता है। इसी प्रकार जो मानव के शरीर में अर्न्तात्मा है, मानो वह भी जब शान्त मुद्रा में मुद्रित होता है और मन को अपने द्वार पर समेट लेता है तो अर्न्तात्मा से ही प्रेरणा आती है कि यह संसार, संसार नहीं है, यह शरीर काया वाला नहीं है, अकाय है मानो मैं निरंजन हूं, मेरी मृत्यु नहीं होती, मैं अपने में शाश्वत हूँ।

मौलिकता

तो मुनिवरो! ऐसा चिन्तन क्यों है, क्यों ऐसे भाव आते हैं, क्योंकि यह जो आत्मा है, परमात्मा से, अपने पिता से इसका विच्छेद हो गया है मानो दूरी हो गया है, यह अपने सखा के समीप जाना चाहता है, इस प्रकृति के आवेशों में रत रहना नहीं चाहता। तो विचार यह कि जो जहां जाना चाहता है, जिसका जहां सखा है, वह वहीं जाना चाहता है। तो कैसा विचित्र यह जगत् है ? कैसी विचित्र इसकी रचना है मेरे प्यारे! गुण-गुण को मानो उसकी मौलिकता को समाप्त करना नहीं चाहता। जब आपो ;ज्योतिद्ध इस पृथ्वी को अपने में रत कर लेती है तो पार्थिवता को यह नष्ट नहीं कर सकती। जैसे अग्नि आपो को शुष्क कर देता है, परन्तु आपो का जो मौलिक गुण है वह उसको समाप्त नहीं कर पाता। अग्नि के स्वरूप को प्राण अपने में समेट लेता है परन्तु अग्नि का जो मौलिक

गुण है वह समाप्त नहीं होता। तो विचार क्या, कि जो जिसका मौलिक गुण है वह मौलिकता उसी की आभा में रत रहती है। क्योंकि एक दूसरे से इसका निकास है। एक दूसरे से निकास होने से एक दूसरे के महत्व को समाप्त नहीं कर पाता। आज मैं इस सम्बन्ध में कोई विशेष विवेचना में नहीं जाना चाहता हूँ। इसके लिए आज का केवल विचार यह है कि हम परमपिता परमात्मा के समीप जाना चाहते हैं। अर्न्तात्मा से प्रेरणा या अर्न्तात्मा की ध्वनियां उत्पन्न होती रहती हैं क्योंकि आनन्द के लिए वह लालायित रहता है, क्योंकि परमपिता परमात्मा आनन्दमयी स्वरूप माने गए हैं, वह सच्चिदानन्दमयी माने गए हैं। इसीलिए आत्मा भी मानो सत्-चित्त-आनन्द में जाना चाहता है। आनन्द सभी स्वरूप में रत होना चाहता है। जो इसलिए हम परमपिता परमात्मा की आराधना करें। आराधना करते हुए नाना प्रकार के परम्परागतों से जो मानव अनुषन करता आया है मानो वह याग कर रहा है, वह आत्मिक याग कर रहा है, ब्रह्मयाग कर रहा है, कोई किसी का सेवामयी याग कर रहा है। मेरे प्यारे! यह जो भिन्न-भिन्न प्रकार का याग है, जैसे कोई पशु की आनन्द से सेवा कर रहा है, यह भी याग है। मानव जो इन क्रिया-कलापों में लगा हुआ है, यह क्यों लगा हुआ है? इसका मन्तव्य क्या है? यह क्यों आनन्द की पिपासा में लगा हुआ है? क्यों आनन्द को चाहता है?

साधना का कर्म काण्ड

मेरे पुत्रो! एक समय कौटिल्य ऋषि महाराज भयंकर वनों में अनुषन कर रहे थे। सब ऋषि-मुनि परम्परागतों से ही अपने में अनुषासन करते रहते थे। कौटिल्य मुनि महाराज एकान्त स्थली पर विद्यमान होकर के वेदों का पठन-पाठन कर रहे थे और वेदों में जो कर्म-काण्ड आ रहा था, उस कर्म-काण्ड में लगे हुए थे। हमारे यहां याग के भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्म काण्ड हैं। इसी प्रकार हमारे यहां साधना के भी भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्म काण्ड माने गए हैं। जिस प्रकार जो साधना में रत होना चाहता है, उसी प्रकार का उसका कर्म काण्ड है। क्योंकि कर्म-काण्ड और साधना दोनों जब एक सूत्र में पिरोए जाते हैं तो चेतना की अनुभूति होने लगती है। हम महात्मा कौटिल्य मुनि की चर्चा कर रहे थे। महात्मा कौटिल्य मुनि महाराज एकान्त स्थली पर विद्यमान होकर के साधना में, कर्म-काण्ड में परिणत हो रहे थे। साधना का कर्म-काण्ड क्या है ? इसके ऊपर विचार आता है। कर्म-काण्ड यह कि मौन होकर के अपनी मानवीय इन्द्रियों का जो क्रिया-कलाप है, इन्द्रियों का जो एक समूहतव माना गया है वह उसमें लगा रहता है। श्रोत्रों में, चक्षु में, त्वचा में, रचना में, इन सब में वह लगा रहता है। इस की तरंगों को, इसके आन्तरिक और बाह्य दोनों स्वरूपों में लगा हुआ है। कहीं साधक कहता है कि मन, तू जा, जहां जाना चाहता है। मानो आत्मा में वह प्राण का दर्शन करता है तो मन कहीं नहीं जाता। मन अपनी जगह स्थिर हो जाता है, उसमें संलग्न हो जाता है।

अनुष्ठान

मेरे पुत्रो, विचार क्या ? कौटिल्य मुनि महाराज जब साधना में परिणत हुए, बारह वर्ष तक उन्होंने अनुषन किया। अनुषन का अभिप्राय यह है कि अपने में साधक प्रभु को प्राप्त करना है। अनुषन का अभिप्राय संकल्प है। एक मानव संकल्प कर रहा है कि मैं इतने वेद मन्त्रों का अध्ययन करके उनके वाघ्मय में, उनके गर्भ को जान करके मैं साधक बनूं। वेद मन्त्रों की प्रतिभा में लगा रहता है और एक एक वेद मन्त्र के ऊपर विचारता रहता है कि जो वेद कहता है, वह यथार्थ है या उसमें मिथ्यावाद है। उसके ऊपर चिन्तन मनन करता हुआ मानो वर्षों व्यतीत हो जाते हैं। बारह-बारह वर्षों का अनुषन, उसी के द्वारा वह याग क्रियाओं में लगा रहता है। हमारे यहां सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के जब से ऋषि-मुनियों का वेद के वाघमय में, अपनी अर्न्तात्मा में प्रवेश हुआ तो सबसे प्रथम

क्रिया-कलापों में याग को उत्कृष्ट माना है, याग की प्रतिभा को सबसे महान माना है। क्यों माना है ? इसके स्वरूप में क्या है ?

यथार्थ स्वरूप

कौटिल्य मुनि महाराज से एक समय सोमकेतु महाराज ने कहा कि भगवन्! आप वेद का चिन्तन करते हो प्रातःकालीन, उसके पश्चात् देव पूजा में लग जाते हो, अग्न्याधान करके अग्नि के क्रिया कलापो में लग जाते हो। मैं यह नहीं जान पाया हूं कि याग का इन वार्ताओं से क्या समन्वय है ? मेरे प्यारे! कौटिल्य मुनि ने कहा कि तुम्हें यह प्रतीत नहीं है कि जब हम याग के कर्म-काण्ड में लग जाते है, याग की प्रतिभा में लग जाते हैं तो वेद का जो सार्थक यथार्थ रूप है, वह हमारे समीप आ जाता है। वह हमारे समीप केसे आता है ? हम प्रत्येक तरंगों का तरंगों से मिलान करते हैं और तरंगों का जब समन्वय हो जाता है तो तरंगें यह निर्णय कराती हैं कि याग का कर्म-काण्ड कहां ले जाता है, इन्द्रियों का कर्म-काण्ड कहां ले जाता है ? तो यह सब एक दूसरे की प्रतिभा में रत रहते हैं। याग से हम संसार के विज्ञान को जान सकते हैं। परमात्मा का रचाया हुआ जो यह संसार है, इस संसार की प्रतिभा को भी जान सकते हैं। कौटिल्य मुनि इतना उच्चारण करके मौन हो गए।

जब पुनः सोमकेतु ऋषि ने यह कहा कि भगवन्! यह तो हमने जान लिया। परन्तु हम इसको अच्छी प्रकार से नहीं जान पाए हैं कि आपने जब वेद मन्त्रों का मानसिक या बाह्य जगत् में उसका उद्गीत गाया है तो याग से उसका क्या समन्वय हुआ ? महर्षि कौटिल्य मुनि ने कहा जैसे हम ने वेद-मन्त्रों का उद्गीत गाया, यह केवल ज्ञान मात्र कहलाता है। मानो यदि ज्ञान के साथ में कर्म-काण्ड जिसमें ज्ञान नहीं है, वह भी अपंग माना गया है। तो मानो हम जितना अध्ययन करें, उतनी ही हमारी क्रिया है, उतना ही हमारा क्रियात्मक जीवन यागों के साथ होना चाहिए। जैसे परमपिता परमात्मा की चेतना से ही कार्य नहीं बन पा रहा है जब तक उसमें स्थूल प्रकृति का समन्वय नहीं होता, स्थूल जगत् नहीं रचता तो सूक्ष्म जगत् का अपना कोई महत्व नहीं माना गया। इसी प्रकार हमारे यहां एक दूसरे की एक दूसरे में पूरकता विद्यमान रहती है। महर्षि कोटिल्य मुनि ने कहा, इसी प्रकार हम वेदों का अध्ययन करते हैं और वेद में हमने पाया कि हमारा रथ वन करके द्यौ लोक में जा रहा है। उस रथ को जानने के लिए परमात्मा ने जिस का निर्माण किया है, उसको जानना बहुत अनिवार्य है।

देवी सम्पदा

मेरे प्यारे! रथ में विद्यमान होते हैं। वेद जो कहता है वह यथार्थ है, या वेद में कोई मिथ्यावाद भी है? इस प्रकार का निर्णय करने के लिए मानव नाना प्रकार के अनुषनों में लग जाता है, जैसे देवी अनुषन करता है। देवी अनुषन का अभिप्राय यह है कि हमारे हृदयों में देवी सम्पदा आ जाए। देवी सम्पदा का अभिप्राय यह है कि हमारे में ज्ञान की प्रतिभा आ जाए। हम ज्ञानी और विवेकी बन कर के उसमें रत हो जाएं और वह हमारी देवी सम्पदा हमें नम्रता देती है, हमें तेज देती है, ओज देती है, मानवीयता देती है, तो यह सब उससे प्राप्त होता है। तो मैं विचार यह दे रहा हू।, तुम्हें यह उद्गीत गाने के लिए बाध्य करता हू। कि वेद मन्त्र कहता है कि हमें दोनों प्रकार की प्रतिभाओं में देवी सम्पदा वाला बनना चाहिए। एक-एक कण-कण में देवी सम्पदा का अनुभव करता है और देवता बन करके इस सागर से पार हो जाता है।

मेरे पुत्रो! हमारे ऋषि-मुनियों ने याग जैसे क्रिया-कलापों को सर्वश्रेष्ठ उच्चतम माना है। कई समय हो गया है याग के विचार देते हुए। याग के इतने विचार हैं कि जीवन समाप्त हो जाता है विचार देते देते बेटा! याग का अभिप्राय जो एक दूसरे में पिरोया जाता है जैसे शब्द है, वेद की ऋचा है, एक शब्द के गर्भ में निहित रहता है।

जैसे मानव जब साधना में प्रवेश करता है तो प्राण की धुकधुकी को यह त्रिवेणी में स्थिर करता है जहां गंगा, यमुना, सरस्वती से इनका समन्वय होता है। जब प्राण की धुकधुकी इनको जागरूक करती है तो ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश होकर के नाना प्रकार का एक पिपाद जिसे हमारे यहां यौगिक ऋषियों ने बेटा! सोम कहा है, उस सोम का जब नस-नाड़ियों से समन्वय होता है तो वहां एक ध्वनि होती है और उस ध्वनि को किन्हीं आचार्यों ने अनहद के रूप में कहा है, किन्हीं आचार्यों ने उसको बेहकरी के रूप में कहा है और किन्हीं आचार्यों ने उसको परमात्मा के दर्शन परमात्मा की भाषा को जानने के लिए कहा है। उसके गर्भ में भिन्न-भिन्न प्रकार का विचार हमारे यहां वैदिक साहित्य में माना गया है।

लोको का समन्वय

आज मैं बेटा! गम्भीरता में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। केवल इतना उद्गीत गाना है, मानो वह जो हमारी ध्वनियां हैं, उसी ध्वनि का सम्बन्ध ध्वनि से ध्वनित होता रहता है। वही ध्वनि ''द्यौ'' से समन्वय होती है, वही ध्वनि वायु-मण्डल को पवित्र बना देती है, वही गृह को ऊंचा बना देती है। तो आज का विचार हमारा यह क्या कह रहा है कि हम उन ध्वनियों में ध्वनित होते चले जाएं जो ध्वनि भिन्न-भिन्न रूपों में मानव एक स्वरों से अपने में ग्रहण करता रहता है। वेद के आचार्य वेद के वाघमय में जब पहुंचे तो इसी से जटापाठ, मालापाठ, धनपाठ, विसर्ग पाठ, उदात्त और अनुदात्त के स्वरों को लेकर के उन स्वरों की ध्वनि ब्रह्मरन्ध्र में होती है अथवा लघु मस्तिष्क में होती है। मुझे कहीं-कहीं ऐसा प्रतीत हुआ है पुत्रो! कि ऋषियों ने यह निर्णय किया है कि यह जो लोक-लोकान्तर हैं, इनका एक दूसरे से जो समन्वय होता है, एक लोक दूसरे लोक से अपने पन में सफल हो जाता है, एक दूसरे में ध्वनि देता है। मानो इसी प्रकार लोक-लोकान्तरों का एक दूसरा लोक गहना है। जैसे माता का पुत्र माता का श्रृंगार माना गया है अथवा उसका गहना गया है, उसका आभूषण माना गया है, इसी प्रकार एक लोक की दूसरे लोक में तरंगे जाती हैं, वह उसका श्रृंगार है। उसकी आभा में रत रहने वाला बेटा! कण्ठ में सजातीय मानो वहीं तो उसका निर्णय कराता है। जैसे माता का पुत्र है, माता का निर्णय दे रहा है। यह अमुक माता का पुत्र है। उसी प्रकार जैसे सूर्य और पृथ्वी मानो दोनों का समन्वय है, सूर्य से ऊर्जा आयी, तरंगे आयीं, मानो पृथ्वी ने अपने में ग्रहण कर लीं। यह नाना प्रकार के व्यजंनों वाली बन गयी और सूर्य ने नाना पृथ्वियों की माला बना करके अपने में धारण कर लिया। वाह रे देव! तेरी केसी अनुपम रचना है। आज जब मैं इसके ऊपर विचार करता हूं तो वाणी मौन हो जाती है। तो इसी प्रकार एक दूसरा लोक, एक दूसरा मण्डल एक दूसरे का वह आभूषण माना गया है। तो इसी प्रकार हम जब एक दूसरे के आभूषण बन करके इस संसार में गम्भीरता से अभ्युदय करते रहेंगे तो हमारा जीवन एक महत्ता का दर्शन करता होगा। मानो परमपिता परमात्मा जिस से हमारा विच्छेद हो गया है, उस से हमारा समन्वय हो सकता है। तो आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ, यह तो बेटा! विचारों का एक विशाल वन है। मैं इन वनों में जाना नहीं चाहता हूँ। केवल परिचय देता रहता हूं कि हमें अपने जीवन को बनाना है। अब मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे। ।

पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, मेरे भद्र ऋषि मण्डल। यह जो हमारी आकाशवाणी जा रही है वहां मैं ने एक याग का आयोजन दृष्टिपात किया। मेरा अन्तर्हृदय परम्परागतों से ही यजमान के साथ रहता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो बहुत ऊंची ऊंची उड़ाने उड़ रहे हैं। क्योंकि आधुनिक जो काल है, मानो मैंने पूज्यपाद गुरुदेव से उच्चारण किया भी है कि आधुनिक काल के समाज को मैं वाम मार्ग कहता हूँ। वाम मार्ग उसे कहते हैं जहां प्रत्येक मानव का आहार और व्यवहार दोनों अशुद्ध हो गए। जब मानव का आहार अशुद्ध हो गया तो व्यवहार भी

अशुद्ध हो गया। नाना प्रकार के प्राणियों के रक्त को पान करने में बड़ा प्रसन्न होता है और यह कहता है कि यह तो हमारा आहार है। यही तो वाम मार्ग है जो दूसरे के रक्त को पान करने में प्रसन्न है, वही तो मुझे वाम मार्ग दृष्टिपात हो रहा है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी-अभी यागों की चर्चाएं की हैं। यागों का सबसे प्रथम तिरस्कार हुआ। याग में देवताओं के नाम पर जहां आहुतियां दी हैं वहां मांस की आहुति देना इन्द्रियों को न जान करके प्रत्येक इन्द्रिय का साकल्प बना कर के आहुति देना। वह साकल्य तो किसी और रूप में था, परन्तु वह किसी और रूप में बना दिया, जैसे चक्षुर्मय स्वाहा जैसे पूज्यपाद गुरुदेव अश्वमेघ याग का वर्णन कर रहे हैं। ।

अहिंसामयी अश्वमेघ याग

कई समय हो गया है अश्वमेघ याग का वर्णन करते रहते। इस अश्वमेघ याग की चर्चा तो वर्षों तक हो सकती है, परन्तु मूल में यह कि अश्वमेघ याग राम या और भी नाना राजा-महाराजा अश्वमेघ याग करते रहे हैं। महाभारत के काल में भी इस प्रकार के याग हुए। त्रेता के काल में भी इस प्रकार के याग भगवान राम ने अपनी अयोध्या में पांच अश्वमेघ याग कराए अपने जीवन में। राजा रावण ने इक्कीस अश्वमेघ याग कराए अपने राष्ट्र में। इस प्रकार के याग परम्परागतों से होते रहे हैं। महाभारत के काल में पाण्डवों ने दो याग कराए। मध्यकाल में भी राजा इस प्रकार के याग कराते रहते थे। याग का अभिप्राय यह लिया कि हिंसा नहीं होनी चाहिए, अहिंसामयी याग होने चाहिए। याग का अभिप्राय यह है कि अहिंसा परमोधर्मः। इसका जो क्रिया-कलाप है वह तपस्वियों का, यौगिक और वेद के वाघमय में इस का वर्णन आता है। परन्तु महाभारत काल के पश्चात् याग का तिरस्कार हुआ। अश्व नाम घोड़े को स्वीकार कर लिया और घोड़े के प्रत्येक अंग की यज्ञ में आहुति देना और उसके मांस को प्रसाद बना कर मानो उसको आहार के रूप में लाना यह याग का तिरस्कार हुआ। इस याग के तिरस्कार का अभिप्राय अश्वमेघ याग का तिरस्कार ही नहीं यहां नरमेघ, देवी याग और वाजपेयी याग में भी इस प्रकार की हिंसा का प्रारम्भ हुआ।याग अपने में सिमट करके अपनी आभा में निहित हो गया और मानव समाज मांस का आहार करने लगा। नाना प्रकार के सम्प्रदाओं में नाना प्रकार के रूपों में इस मांस का आहार प्रारम्भ हुआ। इसके आहार के प्रारम्भ होने पर इस पृथ्वी मण्डल पर प्रत्येक मानव इस आहार का प्रतिहारी बन रहा है। 95 प्रतिशत वाणी इस आहार का प्रतिहारी बन रहा है और केवल पांच प्रतिशत प्राणी इस आहार से अपने को विमुख स्वीकार करता है अन्यथा यह वाम मार्ग नहीं तो इसे क्या कहा जाए।।।

राजा का निर्वाचन

पूज्यपाद गुरुदेव को मैंने कई काल में वर्णन कराया परन्तु आधुनिक काल का जो राष्ट्र है, हमारे यहां राष्ट्र की जो प्रणाली है, राष्ट्र की जो निर्वाचन शैली है वह बड़ी विचित्र रही है। बुद्धिमान एकत्रित होते और राजा का निर्वाचन होता। राजा की प्रतिभा को राजा के क्रिया-कलाप को ऋषि दृष्टिपात करते थे। बहुत पुरातन काल की वार्ता मुझे पूज्यपाद गुरुदेव प्रकट कराया करते हैं कि यहां राजा का निर्वाचन बुद्धिमानों के द्वारा होता है कि इसको राजा बनाना है। यह राजा किस समय अपने आसन को त्यागता है, आसन को त्याग करके वह केसा क्रिया-कलाप करता है, क्रिया-कलाप के पश्चात् उसका आहार कैसा है, उसका व्यवहार केसा है तो उसकी परीक्षा के समय बुद्धिमानों का समूह राजा का निर्वाचन करता।

उस राजा का निर्वाचन जो हिंसक नहीं है। वह जो अहिंसा में है, जो इन्द्रियों वफा संयम करने वाला है, ब्रह्मवर्चोसि का पालन करने वाला है, दूसरों की कन्या को कु-दृष्टिपात तो नहीं करता है, प्रजा के वैभव को अपना शृंगार तो नहीं बना रहा है, यह प्राण को अपने वश में करने वाला है या नहीं, यह प्राणायाम भी करता है अथवा

नहीं, मानो मूलाधार की प्रतिभा में रत होकर के उसका निर्वाचन होता है। जब निर्वाचन हुआ राजा का वह अहिंसामयी अपने राष्ट्र का निर्माण करता है, वह राजा कितना श्रेष्ठ होता है। तो राजा जो यहां निर्वाचित हुआ है वह कौन ? जिसको यह प्रतीत नहीं है कि तू संसार में क्यों है, परन्तु वह भी राष्ट्र का निर्वाचन कर रहा है। जिसे अपने जीवन का ज्ञान नहीं है, वह भी अपने को राष्ट्रीय कह रहा है। जिसे ज्ञान नहीं आध्यात्मिकता का, भौतिकवाद का, व्यवहार का, वह निर्वाचन कर रहा है। तो वह मूर्खों का निर्वाचन किया हुआ राजा प्रायः मूर्ख कहा जाता है, वह भयभीत होता रहेगा, उसे मृत्यु से भय होगा। राजा वह होता है जिसे मृत्यु का भय नहीं होता, राजा वह होता है जो प्रजा को ब्रह्मज्ञान दे सके, राजा वह होता है जो मीन से, सिंह से लेकर के मानव की रक्षा करने वाला हो। अरे, उसका रक्षक कौन बनेगा ? वाक्य मेरे पूज्यपाद प्रकट कराया करते हैं कि जब महाराजा अश्वपति बारह वर्षों तक गऊओं की सेवा करते रहे, प्रत्येक प्राणी की सेवा करते रहे मानो किसी सिंह ने उस पर आक्रमण कर दिया तो महाराज अश्वपति प्रार्थना कर रहे हैं कि हे सिंहराज! तू यहां क्या कर रहा है ? तू मेरे राष्ट्र के पशुओं को जो लाभप्रद है उसे तू आहार कर रहा है। सिंहराज ने राजा की प्रेरणा मानो उसकी आन्तरिक तरंगों को स्वीकार करके गऊ को त्याग दिया। परन्तु आधुनिक काल का राजा अपने लिए नहीं कह सकता कि तू मेरा भक्षण क्यों कर रहा है क्योंकि उसे ज्ञान नहीं है, इतना विवेक और तप नहीं है। जब तप नहीं है तो राष्ट्र का निर्वाचन नहीं होना चाहिए।

आधुनिक समय

राष्ट्रीय विचारों का जो संसार में प्रायः वर्तमान में हो रहा है, मैं प्रकट करता रहता हूँ। आज का प्रत्येक राजा पृथ्वी मण्डल पर दुखित हो रहा है। उसके दुखिता होने का कारण केवल यह कि उसे ज्ञान नहीं है। उसकी निर्वाचन प्रणाली मानो, भ्रष्ट हो गयी है और जब निर्वाचन प्रणाली आहार और व्यवहार दोनों भ्रष्ट हैं तो चिन्ता कौन कर पाएगा, राजा ही तो करेगा। वह चिन्तित है परन्तु राष्ट्र को त्याग नहीं सकता और बिना त्याग के मानव का जीवन कदापि भी ऊंचा नहीं बना करता है। उसमें शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती। तो इसलिए मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से उच्चारण कर रहा हू।, हे भगवन्! मेरा जो हृदय है, वह यजमान के साथ रहता है। परन्तु यज्ञ का तिरस्कार इतना हुआ कि आज राजा और प्रजा दोनों वाममार्गी बने हुए हैं। परन्तु कोई अंकुर रूपों में, बीज रूपों में यजमान बने हुए हैं। मेरा अर्न्तात्मा उस यजमान के साथ रहता है। हे यजमान्! तेरे जीवनका सौभाग्य अखण्ड बना रहे और तेरी आयु दीर्घ होती रहे जिससे ऐसे यागों के क्रिया-कलाप बने रहें। यागों का कर्म-काण्ड तो बुद्धिमानों के द्वारा और तपस्वियों के द्वारा ही उपलब्ध होता है, कर्म तो वह है जो यजमान अपने द्रव्य का सदुपयोग कर रहा है, द्रव्य को जो साकल्य बना करके अग्नि के मुख में परिणत कर रहा है, वह उसी को प्राप्त होता है। मेरी यह सदैव कामना रहती है, वेद के पठन-पाठन में वेद की वाणी अन्तरिक्ष में प्रवेश करती रहे है। तेरा अर्न्तहृदय यजमान की प्रवृत्तियों के साथ ''द्यौ'' लोक में, तेरे हृदय की ध्वनि को ओत-प्रोत हो जानी चाहिए। ।

आशीर्वाद

हे यजमान! मैं सदैव यही कामना करता रहता हूँ। आज मानव जो मांसाहारी बना हुआ है और रसना के स्वादों में लगा हुआ है, ऐसा जो वाम मार्ग का काल है, वह तेरा केसा सौभाग्य जागरूक हो गया है। मैंने केवल यह चर्चाएं की हैं, कि समाज का निर्वाचन पवित्र होना चाहिए। आज अनाधिकार-चेष्टा हो रही है। केवल राष्ट्रीयता में, अनुशासन में और विद्यालयों में अनाधिकार चेष्टा हो रही है। तो इसीलिए यह संसार अपने में एक रक्तभरी क्रान्ति का अवसर बनता जा रहा है, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। आज अधिकार की पुकार है और कर्तव्य का पालन

नहीं है। यह अधिकार ही राष्ट्र और समाज को अग्नि के मुखारबिन्दु में ले जाता चला जा रहा है। अब मैं अपने वाक्यों को विराम देना चाहता हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव बड़ी विचित्र उड़ाने उड़ते रहते हैं, आज का विचार यह कि हे मानव! तू अपने में महान और याग जैसे क्रिया-कलाप कर, तेरे गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहे। इसके साथ यह आज का वाक्य हम समाप्त कर रहे हैं। ।

पूज्यपाद गुरूदेवः मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने बहुत ऊर्ध्वा में विचार दिए। राष्ट्र के सम्बन्ध में इनके हृदय में एक दाह बनी हुई है और यह बहुत समय हो गया है। कोई न कोई काल आएगा यह पूर्ण हो सकेगी। आज का विचार हमारा क्या, कि हम अपने में याज्ञिक बनें, एक दूसरे के साथ अपने को विचारें, ज्ञान और विज्ञान की उड़ाने उड़ने वाले हों। यह आज का विचार अब समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन होगा। मॉडल टाऊन दिल्ली-9।

६ समर्पण में ईश्वर 29 07 1987

जीते रहो! देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा। आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेद वाणी में उस महामना मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा अनन्तमयी है, विज्ञानमयी स्वरूप हैं, विज्ञान उस का गृह है, सदन है और उसका आयतन है। परमपिता परमात्मा सर्वज्ञ है, कोई स्थली ऐसी नहीं है जहां वह परमपिता परमात्मा न हों। इसीलिये प्रत्येक मानव परम्परागतों से ही उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाता रहा है। अथवा उसके गुणों का गुणवादन करना ही हमारा कर्तव्य माना गया है। हम अपने को समर्पित करते चले जायें क्योंकि सर्वज्ञता में समर्पित की कृतियां होती हैं जिसमें मानव अपने को समाहित कर देता है। आज का हमारा वेद मन्त्र बहुत ऊंची ऊंची उड़ाने उड़ रहा था। एक एक वेद मन्त्र में उस परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन आ रहा था क्योंकि हमारे यहां परम्परागतों से ही वेद के मन्त्रों को ले करके मानव ने भिन्न-भिन्न प्रकार की उड़ाने उड़ी हैं और उसी में मानव का एक आदर्श रहा है। क्योंकि हमारे यहां वैदिक साहित्य वाले जब गम्भीर मुद्रा में मुद्रित हुए हैं तो उन्होंने संसार के अनुशासन से ऊर्ध्वा में जाने का प्रयास किया है।

अनुशासन

बेटा! मानव के द्वारा दो प्रकार के अनुशासन होते हैं। एक अनुशासन बाह्य जगत है जिसमें वह रत्त हो जाता है और प्रत्येक वस्तु के ऊपर विचारता रहता है कि क्या प्रत्येक वस्तु अनुशासन में है। क्योंकि जितना भी यह जगत है, पंजीकरण वाला यह ब्रह्माण्ड है इसमें जो भिन्न-भिन्न प्रकार का क्रिया-कलाप हो रहा है वह सब एक अनुशासन में कटिबद्ध है और ऐसा विचित्र प्रतीत होता है कि हम जब भक्तजन उस परमात्मा को समर्पित करने की प्रबलता, उग्रता हमारे हृदयों में बलवती हो जाती है। इसीलिये हम जब विचारते हैं कि वेद मन्त्रों में उस परमपिता परमात्मा का भान है। विधाता अपने को समर्पित कर देता है। प्रजा, राष्ट्र राजा को समर्पित कर देती है। और राजा अपने को प्रजा के लिये समर्पित कर दे। हमारे यहां भिन्न-भिन्न प्रकार का जो साहित्य स्मरण आता रहा है यहां उन में भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार अथवा उन में जो क्रिया-कलाप हैं वह बड़े विचित्र होते रहे हैं।

इदन्नमम्

बेटा! हमारे यहां एक काल ऐसा है जब ज्ञान और विवेक होने के पश्चात् समर्पित की भावना जब आ जाती है तो राजा राष्ट्र को भी त्याग देता है। वह कहता है कि राष्ट्र इदन्नम यह मेरा नहीं है। यह तो परमपिता परमात्मा का राष्ट्र है। वह अधिकार को ही अधिकार स्वीकार करने लगता है। इस प्रकार की जो भावनायें हैं जैसे पुत्र माता पिता को अपने को समर्पित कर देता है और यह कहता है कि माता ममत्व को धारण करने वाली है। मैंने बहुत पुरातन काल में बेटा! पितरो की विवेचना करते हुए कहा था कि यह संसार सर्वत्र पितरयाग में परिणत हो रहा है। जिस भी वस्तु के ऊपर विचार विनिमय प्रारम्भ करते हैं वही पितरों की दृष्टि में दृष्टिपात आने लगती है। चाहे वह जड़वत् हो, चाहे वह चैतन्यवत् हो परन्तु वह सब एक पितरों की गोदी में दृष्टिपात आने लगते है। आज के ही वेद के पठन-पाठन में वेद मन्त्रों की नाना आख्यिकाओं में एक 'पितरयं ब्रह्मः' उस परमपिता परमात्मा को ब्रह्म और पितर स्वीकार किया गया हैं यह जो समर्पित की भावना हृदयों में जब बलवती हो जाती है तो भक्तजन इसी की आभा में रत रहते हैं। बिना ज्ञान के भक्त अपंग हो जाता है। और बिना श्रद्धा और निष्ठा के और बिना सर्मपण के वह ज्ञानी अपने में नेत्रहीन हो जाता है। इसीलिये मानव को विचारना है कि हम अपने में इतने सुदृढ़ हो जायें,

इतनी सुदृढ़ता विचारों में आ जाये जिससे हमारे में समर्पण की भावना आ जाये। समर्पण मानव को श्रद्धा निष्ठा और विवेक में परिणत कर देता है।

ब्रह्माण्ड और पिण्ड की एकरूपता

मेरे पुत्रों! आज मैं तुम्हें एक विद्यालय में ले जाना चाहता हू। जिस विद्यालय में ऋषि मुनि और शिष्यगण विद्यमान हो करके एक दूसरे की आभा में परिणत होते रहे हैं। हमारे यहां परम्परागतों से ऋषि मुनियों का एकान्त स्थलियों में विद्यमान हो करके वेद मन्त्रों के ऊपर विचार विनिमय होता रहा है। ऋषि मुनियों ने तपश्चर होते हुए, तप करते हुए उग्रता को प्राप्त करते हुए उन्होंने ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनों को एक सूत्र में लाने का प्रयास किया। जो क्रिया-कलाप ब्रह्माण्ड में हो रहा है। वही क्रिया कलाप पिण्ड में भी हो रहा है। जितने देवत्व यह बाह्य जगत में हमें दृष्टिपात आते हैं आन्तरिक जगत में भी इसी प्रकार का दृष्टिपात आ रहा है।

पितर याग

आज मैं तुम्हें एक विद्यालय में ले जाना चाहता हू। जिस विद्यालय में ब्रह्मचारी, आचार्यजन पितरयाग में परिणत होते रहे हैं, पितरों की विवेचन होती रही है। मुझे वह काल स्मरण आ रहा है जिस काल में ब्रह्मचारी, ब्रह्मचर्य की उपासना करते हुए उस प्रातःकाल की भव्य बेला में गार्हपथ्य नाम की अग्नि की उपासना करते हुए उसमे रत होते रहे हैं। यह विचारते रहे हैं कि इस ब्रह्माण्ड और पिण्ड को केसे एक सूत्र में लाने का प्रयास करें। हे गार्हपथ्य अग्नि! तू हमें तेजामयी प्रदान कर जिससे तेरे तेज को ग्रहण करते हुए हम तेजस्वी बन कर के मृत्युंजय बन जायें और मृत्यु, अन्धकार हमारे समीप न आये। हे गार्हपथ्य अग्नि! तू हमारे हृदयों में प्रवेश हो। जैसे तू द्यौ में ओत-प्रोत हो कर के द्यौ में पानी परमाणुओं में गति और तेजोमयी और उन्हीं तेजोमयी पदार्थों को ले कर के यह सूर्य ऊर्ध्वा में मानव को प्रकाशवान बना देता है। ब्रह्मचारी अपने में उपासना करते रहे हैं। तेजोमयी की उपासना करते हुए एक समय महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के विद्यालय में एक पद्धति का निर्माण किया कि मानव का जीवन किस प्रकार ऊर्ध्वा में लाया जाये और किस प्रकार का वह क्रिया-कलाप होना चाहिये। ब्रह्मचारीजन प्रातःकालीन आचार्यों के समीप अपनी सारी क्रियाओं से निःवृत हो करके वह यज्ञशाला में विद्यमान हो जाते थे। ऋषि मुनियों ने अनुसन्धान और विचार करते हुए यह वर्णन किया है कि याग होना बहुत अनिवार्य है। याग का जो जन्म है वह मानवीय हृदयों में समाहित रहना चाहिये। ऋषि मुनियों ने यह कहा कि जितना भी शुभ हृदय आत्मा मनस्तत्त्व प्राणत्व इनका जो अनुवृत्तियों में चिन्तन होता है उस चिन्तन की धाराओं का नाम ही याग माना गया है। अग्न्याधान, अग्नि को ही प्रकाश में लाना यह याग कहा गया है। यह अग्नि कितने प्रकार की है? मानव के हृदय में एक अग्नि प्रदीप्त होती रहती है। वह अग्नि माता के गर्भस्थल से ले करके मानव का जब तक शरीर प्राणान्ति नहीं हो जाता, तब तक वह अग्नि प्रदीप्त रहती है। उस अग्नि को हमें उद्बुद्ध करना है, उस अग्नि को जागरूकता में लाना है। जब तक मानव उस अग्नि को जागरूकता में नहीं लाता तब तक वह अपने में महानता को प्राप्त नहीं होता।

समिधा

बेटा! आज मैं तुम्हें उसी विद्यालय में ले जा रहा हू। जहां अग्नि और देवताओं का पूजन होता रहा है। पूजन का अभिप्राय यह है कि हमें देवत्व बनने के लिये उन देवताओं के गुणों को अपने में धारण करना होगा। तब हम देवत्व को प्राप्त करते हैं। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के यहां प्रातःकालीन मन्त्रों का उद्घोष होता। वह जब अपनी क्रियाओं से निवृत्त हो करके यज्ञशाला में पधारते तो वहां ब्रह्मचारीजन, आचार्यजन जब विद्यमान होते तो वेद मन्त्रों

का उद्घोष करते, न्यौदा में से वेद मन्त्र उच्चारण करते हुए उद्बुद्ध अग्नि को प्रकाश में लाते हुए उन्होंने समिधाओं का अग्न्याधान किया। हमारे यहां समिधाओं के भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वरूप माने गये हैं। समिधा उसे कहते हैं जो अग्नि को प्रदीप्त करने वाली हो। इसीलिये हमारे यहां ज्ञान की जो युक्तिया। होती हैं वह भी समिधा कही गई हैं जिससे हमारे हृदय में ज्ञान की तरंगों का जन्म हो जाये। और ज्ञान की तरंगों का जन्म हो करके उससे हम अपने ज्ञान को उद्बुध कर सकें। एक समिधा हमारे यहां वह भी मानी गई है जो प्रत्येक इन्द्रियों के ज्ञान की, इन्द्रियों का जो क्रिया-कलाप है जब इन्द्रियों के प्रत्येक कार्यरूप को हम साकल्य रूप में एकत्रित कर लेते हैं तो साकल्य रूप में एकत्रित करके वह समिधा धारण करते हुए उसमें जो ज्ञान रूपी अग्नि प्रदीप्त होने जा रही है उस ज्ञान रूपी अग्नि में हम जब स्वाहा उच्चारण करते हैं तो हमारी प्रत्येक इन्द्रियों का जो ज्ञान है वह उद्बुध हो जाता है और उद्बुध हो करके वहीं प्रकाश में लाते हुए मानव याग में परिणत होता हुआ साकल्य को जब आहुति रूप में स्वाहा करता है तो मानो ज्ञानरूपी अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। वह उद्बुध स्वाहा अग्नि कह कर ही मानो अग्नि को प्रदीप्त करता रहता है। ज्ञान रूपी अग्नि को साकार रूप में लाने का प्रयास करता है। परन्तु देखो यहां मैं इन वाक्यों में न ले जाता हुआ केवल यह कि देखा ब्रह्मचारीजन और आचार्यजनों द्वारा प्रातःकालीन प्रत्येक विद्यालय में अग्न्याधान होता रहा है। मानो अग्नि का ध्यान होता है, अग्नि को प्रदीप्त किया जाता है। यहां अग्नि को प्रदीप्त करने का नाम ज्ञान को उद्बुध करना है और ज्ञान की प्रतिभा को ले करके अपने जीवन को ऊ।चा बनाते रहते हैं। ।

महर्षि याज्ञवल्क्य का याग चिन्तन

मुझे वह काल भी स्मरण आ रहा है जब महर्षि वशिष्ठमुनि महाराज के यहां विद्यालय में माता अरुन्धति के संरक्षण में भगवान राम लक्ष्मण इत्यादि ब्रह्मचारी एकान्त स्थली पर विद्यमान होकर अग्नि का ध्यान करते रहे हैं। उस समय राम ने माता अरुन्धति से यहा कहा था कि हे मातेश्वरी! यह अग्नि हमें क्या शिक्षा दे रही है? जो अग्नि यज्ञशाला में प्रदीप्त हो रही है। माता अरुन्धति कहती है हे पुत्रो! असम्भवः ब्रह्मचरिष्यं वृति देवः'', हे ब्रह्मचारी! यह हमें त्याग में प्रवृत्त कर रही है। यह कहती है संसार में जितना मानव त्याग में रहता है उतनी मानव की प्रवृत्ति ऊँची बनती है। उतना समाज ऊँचा

बनता है। उतना ही मानवीयता का उसमें एक वृत्त आना प्रारम्भ हो जाता है। आज मैं याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के विद्यालय की चर्चा करना चाहता हू। और वह चर्चा यह है कि नाना ब्रह्मचारी एक पंक्ति में विद्यमान हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज याग के दक्षिण विभाग में विद्यमान हो करके अग्नि के लिये मन्त्रों का उद्घोष कर रहे हैं। वह भक्त जन हैं। भक्ति का अभिप्राय यह है कि किसी वास्तविक स्वरूप को जान करके पिण्ड और ब्रह्माण्ड को एक सूत्र में लाने का नाम वास्तविकता में परिणत होना है, वही भक्ति कहा जाता है, वही भक्त जन हैं। उसको दूसरे रूप में ज्ञान और विवेक में परिणत किया जाता है। परन्तु यह सब एक सूत्र के मनके हैं। इन मनकों के ऊपर मानव को विचार विनिमय करना है। जब याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने अग्न्याधान किया, वेद मन्त्रों का उद्घोष किया, समिधा अपने में जब प्रदीप्त होने लगी तो जो संसार में ऊ।चा बनना चाहता है वह अपनी प्रवृतियों को संसार में त्यागपूर्वक जब समर्पित कर देता है, जब त्यागप्रवृतियों में रत हो जाता है तो ज्ञान और विवेक से संसार में अपने को समर्पित कर रहा है, अपने को ईधन स्वीकार कर रहा है। जैसे वह समिधा यज्ञ में समाप्त होकर के संसार को सुगंधित बनाती है उसी प्रकार प्रत्येक मानव को अपने को सुगन्धित बनाना है। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अपने ब्रह्मचारियों के मध्य में विद्यमान थे, याग सम्पन्न हो गया।

याग में होताओं की संख्या

बेटा! याग सम्पन्न हो जाने के पश्चात् ब्रह्मचारियों ने एक रूपक बनाया। ब्रह्मचारी यज्ञदत्त, ब्रह्म सुकेता, ब्रह्म रोहिणी केतु, ब्रह्म कवन्धि और यज्ञकृतिका यह सब ब्रह्मचारी उपस्थित हुए और उन्होंने कहा पूज्यपाद हम कुछ आप से प्रश्न करना चाहते हैं। याज्ञवल्क्य मुनि बोले-''तुम जो प्रश्न करना चाहते हो वह बड़े आनन्दयुक्त होकर के करो। यदि मैं जानता हू।गा तो उसका उत्तर अवश्य दे सकू।गा।'' ब्रह्मचारियों ने यह कहा कि आप जानते हैं। यदि आप नहीं जानते तो आप यह नहीं कह सकते थे कि मैं जानता हू।गा तो तुम्हारा उत्तर दू।गा। ऋषि मुनियों का हृदय बड़ा निरभिमानी रहा है क्योंकि वह निराभिमानता से प्रत्येक वस्तु का उपभोग करते थे। मैं नहीं जानता, मैं जानता हू।, ऐसे प्रश्नों में वह लगे रहते थे। यह विचारते रहते थे कि परमपिता परमात्मा भी निराभिमानी है इसीलिये हमें निराभिमानी बनना है। क्योंकि परमपिता परमात्मा सर्वज्ञ है, सर्व वस्तुओं का निर्माण करते हुए भी वह अपने में अपनेपन का भान नहीं कराते। इसी प्रकार प्रत्येक महापुरुष अपने में जानता हुआ भी नहीं जानने की घोषणा कर रहा है। यह उसकी उदारता है, यह उस का ज्ञान और ज्ञान के पश्चात् जो विवेक है और विवेक के पश्चात् जो जीवन क्रियात्मक है उसमें वह अपने को ले गया है, अपने को उस में परिणत कर दिया है। इसलिये वह कहता है कि मैं जानता हू।गा तो तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे सकू।गा।

तो याज्ञवल्क्य मुनि महाराज से नाना ब्रह्मचारियों ने प्रश्न किया। सबसे प्रथम यज्ञदत्त उपस्थित हुए और यज्ञदत्त ने कहा कि हे प्रभु! यह जो ब्रह्मचारी उपस्थित हैं ब्रह्मचारी सुकेता के हृदय में एक जिज्ञासा जागरूक हो गई है कि मैं एक याग करना चाहता हूँ। मेरे हृदय में याग की प्रेरणा मानो प्रेरित हो रही है। मैं उस प्रेरणा के साथ में याग करना चाहता हू।, कितने होताओं के द्वारा मैं याग कर सकता हूँ। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा हे ब्रह्मचारियों! तुम्हारे हृदय में ऐसी जिज्ञासा क्यों जागरूक हुई?

उन्होंने कहा प्रभु! हम कुछ मन्त्रों का अध्ययन कर रहे थे और अध्ययन करते हुए हम मगध राष्ट्र में चले गये परन्तु वहां एक कात्यायन के गृह में हमारा जब वास हुआ तो कात्यायन ने हमारा बड़ा स्वागत किया। नाना प्रकार के भोज कराये। उसके पश्चात् उनकी पत्नी ने एक प्रश्न किया था कि क्या तुम याग को जानते हो ? तो हमने कहा था कि 'हे माता, हम याग को नहीं जानते? उन्होंने कहा जिस विद्यालय में तुम अध्ययन कर रहे हो उस विद्यालय में यह प्रश्न करो आचार्य से, कि हम याग करना चाहते हैं तो कितने होता होने चाहिये? हमने माता से कहा 'हे माता! तुम जानती हो उन होताओं को'। उन्होंने कहा, 'मैं होताओं को तो नहीं जानती परन्तु मैं कुछ कुछ उसके रहस्यों में संलग्न और उनको विचार रही हूँ।' तो जाओ तुम अपने आचार्य से यह प्रश्न करो। प्रातःकाल होते ही हमने कात्यायन के गृह को त्याग दिया और आज विद्यालय में पदार्पण हुआ है। आज हमने एक वेद-मन्त्र को विचारा है। उस वेद मन्त्र में यह तो आया है 'त्वं जन्म वृत्यं यागां वृभेः, वृति अस्वताम् गणः वृति व्रतकः ब्रह्मेः' इस वेद मन्त्र में कुछ इस प्रकार के विचारों का उद्घोष तो हो रहा है। परन्तु हम आप से जानना चाहते हैं प्रभु! हमारे हृदय में प्रेरणा वेद मन्त्रों से आई है। वेद मन्त्रों के जो उद्घोष करने वाले हैं उन्होंने भी हमें इस प्रकार का मन्तव्य प्रकट किया है कि आप याग के सम्बन्ध में कुछ जानते हो। तो प्रभु! हम याग को जानना चाहते हैं कि कितने होताओं से हमें याग करना है।

होता

याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि यह जो ब्रह्माण्ड है और वह जो पिण्ड है, इन दोनों को एक ही सूत्र में लाने का नाम याग माना गया है। आज तुम याग करना चाहते हो तो चौबीस होता तुम्हारे याग में होने चाहिये। उस समय यज्ञदत्त ने कहा 'प्रभु! यजमान कहता है कि चौबीस होता कौन से हैं? जिनके द्वारा हम याग करें।'

उन्होंने कहा, चौबीस होताओं में सबसे प्रथम होता का नाम हमारे यहां 'वृणः स्वंजनम् वृही व्रतम्' मानो पंचीकरण कहा जाता है। सबसे प्रथम चार होता है उसके पश्चात् पंचीकरण होता है। उन्होंने कहा प्रभु! इसका वर्णन कीजिये। हमें इसकी जानकारी कराइये। उन्होंने कहा इस ब्रह्माण्ड में और पिण्ड में जो यह परमपिता परमात्मा की यज्ञशाला है, इस यज्ञशाला में जितने होताओं से यह परमपिता परमात्मा का याग प्रारम्भ हो रहा है मानो गतिवान हो रहा है, क्रियावान हो रहा है वह चौबीस होता कहलाते हैं। इन चौबीस में पांच ज्ञानेन्द्रिया। है, पांच कर्मेन्द्रिया। है, पांच प्राण हैं, पांच उप-प्राण हैं और एक चतुष अन्तःकरण-मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार कहलाते हैं। इन चौबीस होताओं के द्वारा मानो यह याग हो रहा है। ऋषि मुनियों ने एक बड़ी विचित्रता में इस वाक् को लिया है क्योंकि हमारे यहां दो प्रकार की आभा परम्परागतों से मानी गई है। कोई मानव किसी में समर्पित होना चाहता है या अपने आदर्शों में आवृत होना चाहता है। तो वह प्रायः अपने को ही स्वतों में समर्पित करने से वह जानना चाहता है। यदि उसे वह समर्पित नहीं करेगा, उसमें संलग्नता नहीं आयेगी, प्राण मन और विचार जिन से हम चिन्तन कहते हैं वह एक सूत्र में आने चाहियें। जब तीनों एक सूत्र में अद्वितीय रूप अपने में धारण कर लेते हैं तो याग को हम अच्छी प्रकार जान सकते हैं।

चौबीस होता

सबसे प्रथम पांच ज्ञान इन्द्रियां हैं। इनका जितना विषय है उस सबको एकत्रित किया जाता है। पांच कर्मेन्द्रिया। हैं इनके विषयों में, उनमें संलग्न किया जाता है। उसके पश्चात् पांच प्राण हैं उन प्राणों को एक सूत्र में लाया जाता है। जैसे प्राण है वह प्राण सर्वत्र विद्यमान रहता है। अपान भी सर्वत्रता में रहता है। व्यान और उदान भी इसी प्रकार सर्वत्रता में रहते हैं। एक ही प्राण का सष्टि के निर्माता, जो विधाता हैं ने इस का विभाजन किया है। इस प्रकार से विभक्त किया है जैसे शरीर में प्राण विभक्त है। इसी प्रकार बाह्य ब्रह्माण्ड में भी यह प्राण क्रियाशील हैं और उसी प्रकार का क्रिया-कलाप हो रहा है। उसी क्रिया-कलापों से मानव संसार के नाना प्रकार के अव्यवयों को जानता रहता है और जानता हुआ अपने में ज्ञान और विज्ञान की ऊ।ची-ऊ।ची उड़ाने उड़ता रहता है। पांचों प्राण उसके सहायक हैं। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार यह जो भी होता है जो इस याग में परिणत हो रहे हैं इस याग में यह होता बन कर आहुति देते हैं। इस याग के ब्रह्मा को मानसिक चिन्तन में माना गया है परन्तु बाह्य जगत में ब्रह्मा परमपिता परमात्मा को माना है। जब इन वाक्यों को हम विचारने लगते हैं तो एक ब्रह्माण्ड हमारे समीप आ जाता है, एक नवीन जगत हमारे समीप आता है। उस परमापिता परमात्मा का कितना वृत है, उसकी कितनी आभायें हैं जिसके ऊपर मानव चिन्तन और मनन करता हुआ अन्त में मौन हो जाता है। यह चौबीस होताओं के द्वारा हम याग करते हैं। तो ब्रह्मचारी से कहा हे ब्रह्मचारी सुकेता! तुम जो याग करना चाहते हो तो तुम चौबीस होताओं के द्वारा याग करो। क्योंकि चौबीस होता ही ऐसे होता हैं जो मानव के जीवन को महान और पवित्रतम बना देते हैं। संसार उसी में रत्त हो जाता है। संसार अपने में और अपने को संसार में हम प्रायः दृष्टिपात करते रहते हैं।

अन्तःकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने जब यह वर्णन किया तो ब्रह्मचारियों ने कहा प्रभु! जिसको आप चतुष अन्तःकरण कहते हैं जैसे मन है इसकी कितनी धारायें हैं। उन्होंने कहा मन की बड़ी विचित्र धारायें हैं। यह मन ही पवित्र बन कर के संसार को पवित्रतम बना कर अपने में धारण कर लेता है। यह मन प्राण से गति ले करके गतिवान हो जाता है। मन जब द्वितीय रूपों में परिणत होता है तो बुद्धि के रूप में परिणत हो जाता है। बुद्धि ही

संसार को दृष्टिपात करती है तथा दृष्टिपात करके उस को क्रिया में लाता हैं जो संसार के पदार्थों को क्रिया में लाने का प्रयास करता है उसे मेधा कहते हैं। वही मेधा जब ऋतम्भरा के रूप में परिणत होता है अपने में मौन होकर के वह 'ऋतम्भरा वृतम ब्रहा वृतम्' देखो, मेधा जब ऋतम्भरा और प्रज्ञा को प्राप्त करता है तब संसार की पराकाष को चिन्तन में लाने तत्पर होता है, तो प्रज्ञावी बन जाता है। बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा और प्रज्ञावी बन कर मौन हो करके प्रभु को अनुभव में दृष्टिपात करने लगता है। यह मनस्तत्व की प्रतिभा कही गई है। उसके पश्चात् चित्त और अहंकार हैं। अहंकार अपने में अवृत रहता है। यह जो चित्त नाम का स्थान है इसमें एक जन्म नहीं, द्वितीय जन्म नहीं, इस में करोड़ों जन्मों के संस्कार विद्यमान रहते हैं। वह जो चित्त मण्डल है उसको जानने के लिये ऋषि मुनियों ने बड़े-बड़े अनुषन किये हैं। जब मैं अनुषन की शैलियों में परिणत होता हू। तो एक ऋषि ने तो 105 वर्षों तक सत्यवाद का पालन किया है। मौन रह कर सत्य को उच्चारण किया है और चित्त मण्डल को जानते हुए उन्होंने यह प्रयास किया है कि चित्त में मेरे आवागमन के संस्कार न रहें। मैं उन संस्कारों को समाप्त करने में लगा हुआ हूँ।

चित्त मण्डल

बेटा! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में महर्षि कुक्कुट मुनि महाराज के महापिता श्वेणकेतु ऋषि महाराज जिनका जन्म वायु गोत्र में हुआ था। एक समय जब वह अपने में चित्त के मण्डल पर विचार विनिमय करने लगे, चित्त मण्डल में जा कर वह याग करने लगे। याग का अभिप्रायः यह कि जिस याग को हम करने जा रहे हैं उसको हम जान लें और आहुति का अभिप्रायः है कि उन तरंगों को हम एकत्रित कर के हृदयरूपी जो यज्ञशाला है उसमें आध्यात्मिक अग्नि है उसमें ज्ञान रूपी अग्नि में आहुति दें। ऋषि अपने में अनुसन्धान कर रहे थे, वेद के एक मन्त्र पर विचार कर रहे थे। चित्रं भवः तरंगः वाचम् व्रवम् वृहेः कृतः। वेद में एक मन्त्र आ रहा था कि यह जो चित्त है इसको हमें जानना है। चित्त को जानते-जानते, मनन करते हुए, सत्य उच्चारण करते हुए, उनकी सत्य ही में निष निष्ठि हो गई। उनका आहार वायु सेवन हो गया। क्योंकि वायु में जितने पोष्टिक तत्व होते हैं उसको वह खेचरी मुद्रा में प्राण से अपने में ग्रहण करते रहें। उसका ग्रहण करना उसे अपने में लाना देखो ''ब्रह्मेः व्रतमा ब्रहः प्राण स्वस्ति रुद्रं वाचन्नमम ब्रह्मा' वेद का उद्घोष करते हुए उन्हें एक सौ बारह वर्ष हो गये और एक सौ बारह वर्षों में वह इतना जान पाये अपने अनुसन्धान के द्वारा कि अपने नाना जन्मों के जो संस्कार चित्त में विद्यमान थे उन संस्कारों को जान करके वह मोक्ष की पगडण्डी को जानना चाहते थे। उस पथ को ग्रहण करने के लिये वह तत्पर हो गये जहां उन्होंने करोड़ों जन्मों के संस्कारों में क्या-क्या क्रिया-कलाप किये थे। उन्हें साकार रूप में अनुभव करते हुए ऋषि ने इतना अनुसन्धान, मुनि महाराज ने ब्रह्मचारियों से कहा 'हे ब्रह्मचारियों! यहां ऋषि मुनियों ने प्रत्येक वस्तु को जानने के लिये बड़ा अनुसन्धान किया है। इसलिये यह चित्त का जो मण्डल है जो भी हम क्रिया-कलाप करते हैं जो भी हमारे संस्कार बनते है उनका चित्त मण्डल में प्रवेश हो जाता है। जानेन्द्रियों द्वारा चित्त मण्डल में जो संस्कार प्रवेश हो जाते हैं उन को जान कर हम यौगिक आभा में प्रवेश कर जाते हैं।

अहंकार

चित्त मण्डल के पश्चात हम अहंकार की प्रतिभा में परिणत हो जाते हैं। अहंकार कहते हैं जो परमाणुओं का मिलान कराता है। जहां इन पंचीकरण के परमाणुओं का मिलन हुआ शिशु के द्वारा तो उन परमाणुओं का अपना अपना स्वभाव जागरूक हो जाता है। वह स्वभाव सब से प्रथम मिलन होने का है क्योंकि अहंकार प्रत्येक वस्तु में मिलनता की प्रतिभा में परिणत करता है। अहंकार उसे कहते हैं जहां एक दूसरा परमाणु संघर्ष करता हुआ वह

अपने में मिलान करता है। पिण्ड का निर्माण हो जाता है। नाना नस नाड़ियों का निर्माण हो जाता है। माता के गर्भस्थल में ही एक शिशु विद्यमान हैं। उस शिशु के होते ही अहंकार की वृतिया। उत्पन्न हो करके उस के चित्त की प्रतिभा और बुद्धि की, मेघावी की वृतका और मनस्तत्त्व यह पंचीकरण की आभा में परिणत हो रहा है। जैसे गुरुत्व है, तेजोमयी है, तरलत्व है। यह तीन प्रकार के परमाणु प्राण में पिरोये जाते हैं और शरीर में पिण्ड बन जाता है। नाना नस नाड़ियों का निर्माण हो जाता है। कोई नाड़ी बुद्धि सूचक है, कोई मनस्तत्त्व सूचक है, कोई पुरातत्त्व नाम की नाड़ी है, कोई पंच लोकाम् वृत्तियों की नाड़ी कहलाती है। किस नाड़ी का सम्बन्ध हृदय से होता है? उन परमाणुओं से मिलान होता है। माता के गर्भस्थल में जब यह अहंकार अपने स्वरूप में आता है शिशु के साथ अपने पंचीकरण को लेकर के और मन बुद्धि चित्त अहंकार को लेकर के तो हम जैसे पुत्रों का जन्म हो जाता है। मैंने तुम्हें कई काल में यह वाक्य वर्णन कराये है कि निमार्ण में यह कितने सहायक हैं। कोई अमृत दे रहा है, कोई तेजोमयी बना रहा है, कोई प्रकाश दे रहा है, कोई गति दे रहा है, कोई अवकाश दे रहा है।

परिवर्तन

वाह रे मेरे प्रभु! तू कितना विज्ञानवेत्ता है। जब भक्तजन तेरी महिमा का गुणगान गाता है तो अन्त में वह मौन हो जाता है, जिज्ञासु मौन हो जाता है। जो परमात्मा की इस प्रकार की उपासना करता है वह जिज्ञासु कहलाता है, यथार्थी कहलाता है। वह देवतम अमृत के प्राप्त हो जाता है। उस समय माता के गर्भस्थल में जब शिशु का निर्माण होता है अहंकार के द्वारा चित्त की वृत्तिया। उत्पन्न होती हैं। उस समय यह चन्द्रमा अमृत देता रहता है, सूर्य प्रकाश देता है। अग्नि उष्णता देती है, वायु प्राण देता है। अन्तरिक्ष आकाश देता है। इसी विज्ञान को लेकर परमात्मा का जो रचाया हुआ शरीर है, यह विज्ञानमयी एक यज्ञशाला है। वह प्रभु कितना विज्ञानवेत्ता है, वह कितना प्रतिभाशाली है। उसके विज्ञान के ऊपर जब मानव चिन्तन मनन करता है तो आश्वस्त हो जाता है। कहता है 'अप्रतम् ब्रह्मः' हे प्रभु! मैं तेरी महिमा को निहार रहा हूँ। मेरी मति नहीं जानती कौन निर्माण कर रहा है। पुरातत्व नाम की नाड़ी का निर्माण हो रहा है। उसके ऊर्ध्वा में पंचम नाड़ियों का निर्माण हो रहा है। उससे ऊर्ध्वा में स्वर्णमयी नाड़ी का निर्माण हो रहा है। उसके ऊर्ध्वा में धातु पिपाद वृतिया। नाड़ियों का निर्माण हो रहा है। उन नाड़ियों में भिन्न-भिन्न प्रकार की नाड़ियों की शाखाओं का निर्माण होता है। वेद के मन्त्रों के ऊपर चिन्तन करने वाले ऋषि कहते हैं कि 72 करोड़ 72 लाख 10 हजार 202 नाड़ियों का निर्माण होता है। मेरी भोली माता नहीं जानती।

ब्रह्माण्ड दर्शन

वेद का आचार्य कहता है कि हृदय भी दो प्रकार के माने गये हैं। एक हृदय वृत्ति अस्वतम है, वह बुद्धि के निचले वृत भागों में होता है। एक लघु मस्तिष्क में होता है जिसे हम हृदय वृति कहते हैं। इस हृदय का सम्बन्ध लोक लोकान्तरों से होता है। लोक लोकान्तरों को जानने वाला तब बनता है जब दोनों हृदयों का समावेश होकर के जब लघु मस्तिष्क में से वृतिका मस्तिष्क में चला जाता है। और वृत्तिका मस्तिष्क में जा करके यह वहां कृत-मस्तिष्क में प्रवेश होकर के वह ब्रह्माण्ड के दर्शन कर लेता है। मैं कोई व्याख्यता नहीं हू। केवल संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ। वह परिचय यह है कि प्रभु का जो ज्ञान है वह कितना अनन्तमयी माना गया है। प्रभु का विज्ञान कितना अलौकिक है। वह चन्द्रमा जब अमृत देता है तो वह अमृत समुद्रों को देता है, कहीं तरंगों को देता है, कहीं सूर्य की ऊर्जा से वह अपने को प्रकाशित करता है। प्रभु की रचना कितनी विचित्र है। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने ब्रह्मचारियों से कहा 'हे ब्रह्मचारियों! देखो वह शिशु जो तुम में विद्यमान है मानो एक प्रकार का वह याग हो रहा

है। इस याग के ऊपर तुम्हें मनन और चिन्तन करना है। इस याग के ऊपर तुम्हें याज्ञिक बन कर अपने को ऊर्ध्वा में ले जाना है। जैसे यज्ञशाला में यजमान बन कर के आहुति देता है अपनी मनस्तत्व प्रवृतियों को शान्त कर के मानव शान्त को जाता है। तो वह अपने में अपनेपन को दृष्टिपात करता रहता है।

विश्वकर्मा

आज मैं सूक्ष्म सा परिचय देने आया हू। और वह परिचय क्या है? मुनिवरो देखो, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज से ब्रह्मचारियों ने यह कहा प्रभु! यजमान याग करना चाहता है तो कितने होताओं के द्वारा याग होना चाहिये। उन्होंने सबसे प्रथम होताओं का वर्णन करते हुए है कि चौबीस होताओं से यह संसार याज्ञिक बना हुआ है, संसार रूपी याग प्रारम्भ हुआ है। जैसे यह प्रारम्भ हुआ है वैसे यह गतिवान होता रहेगा। सष्टि के सम्पन्न होने के पश्चात् यह होता अपने-अपने में परिणत हो जायेंगे। ऋषि ने कहा कि माता के गर्भस्थल में निर्माण हो रहा है और निर्माणवेता निर्माण करता है। वह जो विज्ञानमयी स्वरूप है, विज्ञान जिस का आयतन है, वह महान विज्ञानवेत्ता है। वह विज्ञान के द्वारा केसी स्थली में मानव का निर्माण करता है। हम जैसे पुत्रों का निर्माण करता है। मेरी भोली माता को कोई ज्ञान नहीं होता कौन निर्माण कर रहा है, कौन निर्माणवेत्ता है। वह निर्माणवेत्ता विश्वकर्मा बन कर के हमारा निर्माण कर रहा है। आओ मेरे पुत्रो! हम प्रभु की उपासना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार रूपी यज्ञशाला के निर्माण और इस मानवीयत्व को जानते चले जायें। इसके ऊपर जो हमने उड़ाने उड़नी हैं वह उड़ान बड़ी विचित्र हैं। प्रत्येक मानव यह चाहता है कि मैं न्यौदा में परिणत हो जाऊ।। मैं न्यौदामयी मन्त्रों का उच्चारण करते हुए मैं आत्मदर्शन करूं। आज यह विवेचना प्रकट की है। आज इस विवेचना का प्रारम्भ हुआ है। इस न्यौदामयी मन्त्रों का उद्घोष होता रहेगा।

आदर्शीवाद

आज का विचार यह कि हम परमपिता की आराधना करते हुए जैसे आचार्यों ने कहा है कि एक विधाता अपने को दूसरे विधाता के चरणों में समर्पित कर देता है, उसे भक्ति नहीं कहते उसे आदर्श कहते हैं, वह आदर्श माना गया है। क्योंकि बाह्य जगत में व्यवहार में इतना आदर्श होना चाहिये जिससे एक दूसरे को हम समर्पित करते रहें। जब त्याग पूर्वक हम समर्पित करते हैं तो वह हमारे हृदय को, हमारे मनुष्यत्व को हृदयग्राही बनता है, हम त्याग पूर्वक परमपिता परमात्मा की महती में रत हो जाएं। आज का विचार यह कि संसार में समर्पित होने की भावना हमारे हृदय में होनी चाहिये। हमारे जीवन का आदर्श इतना ऊ।चा हो कि हम आध्यात्मिकवाद में, भौतिक जगत में, विज्ञान में इतने आदर्शवादी हों जिससे हमारा जीवन एक महान प्रतिभा में परिणत हो जाये। क्योंकि हम इस संसार सागर से पार होना चाहते हैं। प्रत्येक मानव की यह आकांक्षा बनी रहती है कि इस संसार से हम उपराम हो जायें। उपराम जब होंगे जब हमारा आदर्श, हमारे में समर्पित की भावना उत्पन्न हो जाती है। उन्हें हम उद्बुध स्वाहा कहकर जागरूक कर देते है। तो हमारा जीवन एक महानता में परिणत हो जाता है आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन होगा। माडल टाउन,अमृतसर।

७ वैदिक प्रकाश के आयाम 21 03 1988

जीते रहो! देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भा।ति, कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद-वाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा ज्ञान और विज्ञान में रत रहने वाले हैं, क्योंकि सष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक नाना विज्ञानवेत्ता हुए, परन्तु कोई विज्ञानवेत्ता ऐसा नहीं हुआ, तो उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमा बद्ध सकैं क्योंकि वह परमपिता परमात्मा सीमा से रहित हैं और वह सीमा में आने वाले नहीं है।

विज्ञान प्रतिष्ठा

सष्टि के प्रारम्भ से विज्ञान मानवीय मस्तिष्कों में प्रायः नृत्य करता रहा है। क्योंकि प्रत्येक मानव की उत्कट इच्छा बनी रहती है कि ''मैं विज्ञानवेत्ता बनूं और विज्ञान में मेरी मानो प्रतिष्ठा होनी चाहिए।'' वह उसमें प्रतिष्ठित होना चाहता है। क्योंकि मानव का यह स्वभाव बना हुआ है क्या संसार के प्रत्येक तन्तु को जानने की उसकी प्रबल इच्छा बनी रहती है। वह कोई भी विषय हो संसार का, मानो एक तिनके से ले करके पर्वतों और जलाशय ओर जितना भी लोक-लोकान्तरवाद है, उसके लिए एक प्रबलता बनी रहती है कि ''मैं जितना भी संसार का विषय है, उसके ऊपर मेरा आधिपथ्य हो जाये।''

नवोन्मेषी वैदिक प्रकाश

तो बेटा! ऐसा मानव की कामना परम्परागतों से रही है, क्योंकि जितना भी ज्ञान और विज्ञान है, यह सदैव नवीन रहता है, इसमें वृद्धपन नहीं आता। क्योंकि वृद्धपन उनमें आता है, जिनमें नवीनता और ज्ञान की सूक्ष्मता रहती है। मानो अज्ञान में वृद्धपन आता रहता है। परन्तु जो ज्ञान है, और विज्ञान से गुथा हुआ है, आध्यात्मिकवाद की उसमें पुट लगी रहती है, तो वह ऐसा ही सष्टि के प्रारम्भ में, ऐसा ही अरबों वर्षों के पश्चात् भी मानो उसी प्रकार उसमें नवीनता रहती है और दर्शन रहता है और मानवीयत्व रहता है। तो उसमें वृद्धपन नहीं आता, सदैव नवीनता बनी रहती है। जैसे हमारे यहां वेद है, वेद सष्टि के प्रारम्भ में भी वेद है और वर्तमान में भी वेद है परन्तु वेद का जो अभिप्रायः है, उसकी जो प्रतिभाषित है, वह सदैव नवीन है और प्रकाश है।

वैदिक प्रकाश और सूर्यप्रकाश

मानो जहां प्रकाश का प्रसंग आता है और प्रकाश की प्रतिभा आती है तो विचार आता है, वेद ही प्रकाश है। मेरे प्यारे! देखो यहां, जब हम वेद को प्रकाश कहते थे। तो पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा बहुत समय हुआ, बेटा! जब अध्ययन करते रहते थे, तो उनसे प्रश्न करते कि ''मानो प्रकाश तो यह सूर्य कहलाता है आप वेद को प्रकाश क्यों कह रहे हैं?'' तो पूज्यपाद गुरुदेव उसका निराकरण करते रहते कि ''यह जो सूर्य है, यह तो प्रातःकालीन् नेत्रों का प्रकाश बन करके आता है और बाह्य-जगत् को यह दृष्टिपात् कराता रहता है, बाह्य-जगत् वाला जितना भी यह जगत् है, यह उसको मानो दृष्टिपात् कराता है और यह जो वेद रूपी प्रकाश है, यह मानव के अन्तःकरण में जब प्रवेश कर जाता है, तो अन्तःकरण को प्रकाशित कर देता है।'' बेटा! यह केसा वेद है, जो मानव के अन्तःकरण को प्रकाशित कर देता है! तो इससे सिद्ध हुआ कि ज्ञान का नाम वेद माना गया है और ज्ञान और प्रकाश मानो दोनों एक सूत्र में सूत्रित होते रहे हैं।

वेद में अनन्त विद्याएं

मेरे प्यारे! विचार आता रहता है कि आज की हमारी वेद की प्रतिभा, अथवा विचारों की जो मानो एक सूत्रता है, यह वर्णन कर रही है कि परमपिता परमात्मा का जो एक अनूठा ज्ञान और विज्ञान है, अथवा उसको हम अपने में धारण करने वाले बनें। क्योंकि जितना ज्ञान और विज्ञान है, यह परम्परागतों से बेटा! मानवीय मस्तिष्कों में, नृत्य करता रहा है और वह 'मानं ब्रह्मे कृतम्, जितना यह जान सकता है। वेद में अनन्त विद्याएं हैं और जितनी विद्या मानव के चरने के योग्य है, उतनी ही चरता है परन्तु देखो उन्हीं को क्रिया में लाने का प्रयास करता है। ऐसी अनन्त विद्याएँ हैं, जो वेद में हैं और मानव ने सष्टि के प्रारम्भ से अब तक उसके ऊपर विचार भी नहीं किया। ऐसा अनुपम मानो ज्ञान है। मानो देखो ज्ञान के ऊपर विचार आता रहता है। वेद का साहित्य, वेद-मन्त्र, कहीं-कहीं तो मानो ऐसी उड़ानें उड़ता है, कि मानव उसमें शान्त हो जाता है।

आज मैं, बेटा! विशेषता में नहीं, क्योंकि जैसे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी हैं, उसके ज्ञान और विज्ञान को कोई सीमाबद्ध नहीं कर सकता, इसी प्रकार उसका दिया हुआ जो अनुपम ज्ञान है, वेद है, प्रकाश है, वह भी अनन्तमयी माना गया है, उसकी कोई सीमा नहीं है।

संसार में वृद्धपन का कारण

इसीलिए हमारा आज का वेद-मन्त्र हमें बड़ी ऊर्ध्वा में उड़ान उड़ा रहा है, विचार दे रहा है 'हे मानव! तू सदैव नवीन् रहता है, तेरे में वृद्धपन नहीं आता'। मानो वृद्धपन कोई वस्तु होती ही नहीं संसार में। मानो वृद्धपन जब आता है जबकि अपनी आवश्यकता के अनुसार मानो वह उससे विशेष देखो अपने को इस संसार में निहित कर देता है और संसार में ऐसे रगित हो जाता है, कि उसे कोई मार्ग प्राप्त नहीं होता, केवल त्रुटियों के क्षेत्र में प्रवेश करता हुआ वह जब मानो देखों, जब संसार की प्रबलता समाप्त हो जाती है, उसके पश्चात् जहाँ से उसका प्रारम्भ हुआ है, वहीं उसको आ जाना है। और, जहां से प्रारम्भ होता है, जब वहीं आ जाता है तो वहां उसे अपने को मानो अपने संसार से दूरी दृष्टिपात् करके अपने को कहता है, ''मैं वृद्ध हो गया हूँ।'' परन्तु, देखो वृद्ध नहीं होता है, क्योंकि आत्मा वृद्ध नहीं होता, परमाणु वृद्ध नहीं होते हैं, अग्नि जो देखो पंच महाभूत, ये जो क्रियाकलाप कर रहे हैं, ये भी वृद्ध नहीं हो रहे हैं। परन्तु जो मेरे प्यारे प्रभु ने तुझे एक मानो धरोहर दी थी उस धरोहर को तू परमात्मा की धरोहर न जान करके अपनी धरोहर स्वीकार कर लेता है। उसे अपनी धरोहर स्वीकार करके उसका अनुचित उपयोग करके मानो देखो उसके पश्चात् जब जहाँ से प्रारम्भ हुआ था, जब वहीं जाता है तो उसे अपने को निराशा प्रतीत होने लगती है और निराशा का नाम ही वृद्धापन कहा गया है।

वैदिक साहित्य से ऊर्ध्व गति

मेरे पुत्रों! मैं विशेषता में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार तो ऐसे हैं कि जिन विचारों में मानव गुथ जाता है, जिन विचारों में प्रवेश हो जाता है, वे विचार मानो सदैव नवीन बने रहते हैं, इन विचारों में वृद्धपन नहीं आता। मेरे पुत्रो! देखो, आज मैं विशेषता न देता हुआ केवल विचार यह कि हमारा वेद-मन्त्र क्या कहता है? वेद का साहित्य क्या कह रहा है? बेटा! वेद कहता है, 'हे मानव! तू अपने मार्ग को मानो ऊर्ध्वा में ले जाने का प्रयास कर।

विषयों का वैदिक प्रकाश-मन्थन

मुनिवरो! देखो, ऋषि-मुनिवरों ने बड़ा प्रयास किया और ऋषि-मुनियों ने प्रयास करते हुए यही मानव के लिए बड़ी ऊर्ध्वा में वैदिक साहित्य से, जैसे मुनिवरो! देखो मानव समुद्रों में प्रवेश हो करके और कहीं से वह

समुद्रों में से वह रत्नों को लाता है, कहीं स्वर्ण की धतु का पिपाद बना करके लाता है, परन्तु इसी प्रकार ऋषि-मुनियों ने इस संसार रूपी समुद्र में, इस वैदिक रूपी प्रकाश में रत करके और मानो देखो बडे सुन्दर-सुन्दर हमें रत्नों का कृत और वृत्तियाँ प्रदान की हैं।

जैसा, बेटा! मैं इससे पूर्व काल में तुम्हें वर्णन करा रहा था, बड़े गम्भीर वाक्य थे, मानो जिससे देखो मानव ज्ञान और प्रयत्न के माध्यम से आत्मा का नृत्य, परमात्मा का नृत्य, परमात्मा ही प्रतिभाषित होने लगता है, यह इससे पूर्व काल में, बेटा! हम वर्णन कर रहे थे। और, तुम्हें यह प्रतीत हो गया होगा कि मानव का यौगिकवाद कितना विचित्र है और जितना मानव यौगिकवाद में प्रवेश करता है और अपने को व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश करा देता है, उतना ही मानव का आयु प्रबल होता है, उतना ही मानव अपने में आत्मवान् बनता है, उतने में ब्रह्मवान् बनता है। तो मानो देखो प्रभु की प्रतिभा मे रत हो जाता है।

अतिथि के तीन प्रकार

आओ, मेरे पुत्रो! मैं तुम्हें उसी क्षेत्र में प्रायः ले जाना चाहता हू।, जहां, बेटा! एक अतिथि की सेवा की चर्चा हो रही थी और अतिथियों का एक नृत्य हो रहा था। तो मरे प्यारे! देखो अतिथि किसे कहते हैं? अतिथि उसे कहते हैं अतिथि भी तीन प्रकार के होते हैं। एक अतिथि वह होता है, जो ब्रह्मवेत्ता होता हैं एक अतिथि वह होता है, जो साधारणत्व होता हैं एक अतिथि वह होता है, जिससे मानव की जानकारी होती है और वह अपने गृह में प्रवेश करता है, बिना सूचना के अभिप्रायः केवल एक ही है कि अतिथि वह कहलाता है, जिसकी कोई तिथि नहीं होती, मानो देखो जो अनायास ही अपने गृह में जिसका वास होता है।

तो मेरे प्यारे! जो साधारणतः अपना मित्र होता है, वह मित्र जो अतिथि है, वह भी कहता है कि ''आज मेरी प्रबल इच्छा हुई मिलन की, मानो मेरा अन्तरात्मा बहुत समय से प्रबलता से रत हो रहा था कि अपने मित्र से मेरी मित्रता का पुनः परिचय हो जाये।'' तो वह भी अपने में मधुर भाषी और अपने उद्गम विचार उद्गमता दे करके, बेटा! एक-दूसरे में प्रसन्नता देता चला आता है। और, द्वितीय जो मानो देखो वह अतिथि होता है, वह ऐसा होता है, जो मानो देखो साधारणतः कुछ सूक्ष्म ज्ञान होता है, विशेष ज्ञान नहीं, सूक्ष्म होता है। मानो वह अपने गृह से आता है और वह कहता है ''अन्नं ब्रह्मे कृतो ब्रह्मा', मैं अतिथि हूँ। मुझे अन्न प्रदान करो।''

अतिथि की सेवा

मेरे प्यारे! देखो जिसके गृह में प्रवेश करता है अतिथि, वह उसे भोज कराता है और भोजन करा करके यह कहता है कि ''महाराज्! कहां से तुम्हारा आगमन हो रहा है?'' तो वह अतिथि कहता है कि ''मैं मानो देखो भ्रमण कर रहा था, भ्रमण करते मेरी इच्छा हुई कि मेरा अन्नाद, मेरा अन्तरात्मा, मेरा शरीर जब क्षुधा से पीड़ित होने लगता तो मैं तुम्हारे गृह पर आ गया हूँ। मैं मानो देखो, अपने 'वर्णं ब्रहे कृतम्' मैं अपने वानों को ले करके, विचारों को, वृत्तियों को ले करके, तुम्हारे गृह में मेरा वास हुआ है।'' मेरे प्यारे! देखो पति-पत्नी उसका स्वागत करते हैं। अन्नाद देते है और विचार देखो, सायंकाल को वह शांत हो करके, मानो मुद्रित होता है, उससे अपने विचार लेते हैं।

अतिथि की प्रकाश चर्चा

वे कहते हैं कि ''महाराज आप अतिथि हैं, आप हमें कुछ उपदेश दीजिए। हमने आपका आतिथ्य किया। मानो आप कुछ हमारे अन्तरात्मा में कल्याण की कोई वार्ता प्रकट कीजिए'' वह अतिथि कहता है कि ''आइये, भगवन् विराजो'' वह विराजमान हो जाते हैं। वह कहता है कि ''दिवस आया, रात्रि आ गई है, पिफर दिवस आया

और रात्रि आ गई, रात्रि गई तो दिवस आ गया है। यह मानव का जीवन इसी प्रकार व्यतीत होता रहता है और रात्रि और दिवस के आधार पर ही मानव का देखो जीवन समाप्त हो जाता है। वही मानो देखो अहोरात्रों, में, वही माह में, वही मानो देखो माह से पूर्व वह मानो देखो सप्ताह कृतियों में रत होता रहता है। और, वही समय, मानो देखो पन्द्रह दिवस देखो अमावस्या आती है, पूर्णिमा आती है और अमावस्या के पश्चात् पूर्णिमा, पूर्णिमा से अमावस्या आ जाती है''।

चन्द्रमा की कलाओं में पूर्णिमा और अमावस्या

देखो अमावस्या और पूर्णिमा क्यों आती है ? यह पन्द्रह-पन्द्रह दिवस का एक कृत माना गया है, जिससे मानव की आयु इससे कटिबद्ध रहती है। आयु क्या, मानव का जीवन इससे कटिबद्ध रहता है। मानो देखो अमावस्या आ गई है, एक भी किरण, एक भी मानो देखो कान्ति रात्रि को प्रकाश की नहीं रह पाती। यह चन्द्रमा अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त हो करके मानो देखो सम्पन्न कलाओं से रहित भी हो गया है। अमावस्या को रहित हो जाता है और, मुनिवरो! देखो, पूर्णिमा को वही सम्पन्न कलाओं से युक्त हो जाता है।

मानो वह कहता है, साधारणत्व कि ''मैं ब्रह्मवेत्ता नहीं हूं, जितना जानता हूं, जितना मैंने अब तक अपने जीवन को जाना है, जिज्ञासु बन करके अपने आश्रम को मैंने त्याग दिया और मैं जिज्ञासु बनना चाहता हूं, मैं जिज्ञासु हूं और जिज्ञासुपने में जितनी वार्ता मैंने जाती है, उतना मैं वर्णन करा रहा हूँ। मानो देखो, यह चन्द्रमा-अमावस्या उसे कहते हैं, जब चन्द्रमा का, प्रकाश का एक भी अंकुर, एक भी कला नहीं रहती। क्योंकि वह चन्द्रमा रसों का स्वादन और चन्द्रमा वनस्पतियों का राजाधिराज है और यही चन्द्रमा देखो अमृतमयी कहलाता है।''

पूर्ण चन्द्र की षोडश कलाएँ

मुनिवरो! देखो, जब यह वाक्य उन्होंने वर्णन किया। उन्होंने कहा, ''दिवसं ब्रह्रे' जब पूर्णिमा का दिवस आता है, तो यह चन्द्रमा अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त होता है।'' मेरे प्यारे! देखो षोडश कलाओं वाला चन्द्रमा है, ये षोडश कलाएं ही इसमें निहित रहती हैं। मेरे प्यारे! प्रत्येक-प्रत्येक कला का अपना महत्त्व माना गया है और प्रत्येक कला में कोई न कोई महत्त्व है, विज्ञान है, रस है, आनन्द है, और मानो देखो, उसी में कठोरता का प्रतिद्दोत होने लगता है।

मेरे प्यारे! देखो ऋषि कहता है, वह अतिथि कहता है, कि ''हे कृतो! हे गृह स्वामी! हे गृहस्वामीजी! यह तुमने जाना है कि मानो देखो पूर्णिमा का जब दिवस आता है, यह दोनों पन्द्रह-पन्द्रह दिवस के क्यों है? क्योंकि मानव को इनसे शिक्षा प्राप्त होती है। यह हमारे जीवन में मानो कहीं शुक्लपक्ष आयेगा, तो कहीं कृष्णपक्ष आयेगा, देखो शुक्लपक्ष चन्द्रमा पूर्ण होने तक है और चन्द्रमा की कलाएं जब घटित होने लगती हैं और अमावस्या के दिवस मानो उसको कृष्णपक्ष कहते हैं।''

आशा-निराशा की शिक्षा में चन्द्र प्रकाश

जब वह जो कृष्ण पक्ष है, शुक्लपक्ष है, यह क्यों है? क्योंकि कहीं जीवन में प्रकाश है, और कहीं जीवन में अन्धकार है। मानो देखो यह शिक्षा देता है। एक ही माह में शिक्षा मिलती है, वैदिक साहित्य से ''हे दम्पत्ति! तुम गृह में रहते हो, मानो कहीं तुम्हारे जीवन में ऐसा आ जाये कि मानो देखो रात्रि छा गई, अन्धकार छा गया है, मानो कला नहीं रही है ज्ञान की, उस समय तुम मानो देखो अपने में अन्धकार ही दृष्टिपात् आये, तो अन्धकार में तुम धैर्य और ज्ञानयुक्त हो करके उस अन्धकार को मानो अपने से दूरी करने का प्रयास करते रहो।'' और, देखो उस समय 'ब्रहे', वह जो अज्ञान है वह दूरी हो जाता है। और देखो द्रव्य का भी, देखो द्रव्य भी प्रकाश कहलाता

है। हमारे यहाँ प्रकाश भी कई प्रकार के होते हैं। सबसे उत्तम प्रकाश वेद का होता है, ज्ञान का होता है, विवेक का होता है। यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड उसकी सम्पदा कहलाती है।

द्रव्य का प्रकाश

मानो देखो 'अन्धं ब्रह्मे कृतम्' एक वह कहलाता है, जब मानव द्रव्य से हीन हो जाता है। द्रव्य भी प्रकाश है। उस द्रव्य का हम सदुपयोग कर रहे थेँ एक समय ऐसा आया कि द्रव्य नहीं रहा, सदुपयोग भी नहीं कर सके। तो उस समय वह मानो द्रव्य से हीन होते हुए अपने को प्रभु के राष्ट्र में स्वीकार करो यह कहो कि ''जो द्रव्य चला गया, वह पुनः आ सकता है, वह पुनः मेरे समीप आयेगा।'' तो उससे अपने को शान्त्वना दे करके, अपनी आत्मा देखो मन और प्राण को एकाग्र करके आत्मा के समीप पहुंचो और यह प्रश्न करो कि ''वह पुनः से जो प्रकाश चला गया है, वह पुनः से मेरे द्वार पर आ जाये।'' जब इस प्रकार मानो देखो मानव का धैर्य और संतोष बना रहता है, तो मानो देखो वह संतोषी बन करके मानो देखो अपने जीवन में विवेकी बन जाता है, उस समय मानो देखो, यह सम्पदा ज्ञान होता है।

जन समूह का प्रकाश

एक प्रकाश होता है, जन-समूह का। जन-समाज का प्रकाश होता है। जन-समाज के प्रकाश में मानो अपने को मानवीयता को मानो वृत्त करता रहे। और, मानो देखो जन-समूह जितना भी उसके द्वारा यह लोक की इच्छा होती है, यह लोकेष्णा कृत कहलाता है। मानो देखो समाज तुम्हारे अनुकूल हो जाये, वह कौन-सा क्रियाकलाप है? मेरे प्यारे! देखो जो तुम्हारे यहां संतोष है, जो देखो तुम्हारे यहां एक धैर्यवान् बन गये हो, द्रव्य का सदुपयोग करने लगे हो, वह द्रव्य का सदुपयोग ही, वह तुम्हारा जन-समूह एकता के सूत्र में आ जाना है और भी प्रकाश हो जाना है। तो यह मानो देखो प्रकाश कहलाता है।

तीन प्रकार के प्रकाश में आशा निराशा की शिक्षा

आज मैं, बेटा! देखो ऋषि कहता है, अतिथि कहता है, ''गृह जो तुम्हारा प्रकाश है, तुम्हारे समीप रहे! सबसे प्रथम परमपिता परमात्मा का ज्ञान, विवेक और देखो द्वितीय तुम्हारे द्वारा द्रव्य का प्रकाश और तृतीय तुम्हारा देखो जन-समूह का प्रकाश ये कई प्रकाश होते हैं। इन प्रकाश से यह प्रकाश एक समय आएगा जब नहीं रहेंगे तो उस समय अपने प्रभु और अपने संतोष को अपने से दूरी मत कर देना।''

मेरे प्यारे! यह अमावस्या जो तुम्हे शिक्षा देती है, यह पूर्णिमा की जब एक भी कलाए। नहीं रहती तो उसको अमावस्या कहा जाता है। अमावस्या के पश्चात् वह एकपदा, द्विपदा मानो देखो वह कला युक्त होने लगता है। एक समय आता है कि पूर्णिमा के दिवस मानो सम्पन्न कलाओं से युक्त हो जाता है और सम्पन्न कलाओं से जब युक्त हो जाता है तो वही सम्पन्नता, मेरे प्यारे! देखो मानव को अभिमान में न परिणत कर जाये, अभिमान न प्रवेश कर सके। मेरे प्यारे! देखो वह तुम्हें यह शिक्षा देती है। जैसे चन्द्रमा अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त हो जाता है और समुद्रों के जल को अपने में सिंचन कर लेता है और वह इसलिए कर लेता है क्योंकि प्रभु का सृष्टि-विज्ञान बड़ा अनुपम है।

मैं यही तो कहता रहता हू। वैज्ञानिकों से भी। मुझे बहुत पुरातन काल हुए बेटा! जब महाराजा अश्वपति के विद्यालय में वैज्ञानिक एक पंक्ति में विद्यमान होते थे तो उस समय यह कहा करते थे कि प्रभु का विज्ञान केसा अनूठा है! प्रभु का विज्ञान कितना अनुपम है, कितना महान है। मानो देखो पूर्णिमा का दिवस आता है, पूर्णिमा के दिवस में वह मानो देखो चन्द्रमा इस समुद्र से अपनी अग्रता और देखो उसके जलाशय से जल ले करके वह

अपने में सिंचन कर लेता है, अपने में धारण कर लेता है और कहा धरोहर, धरोकृति करता है? वह जो अन्तरिक्ष है वह जो द्यौ है, मानो देखो उसी में वह प्रवेश करा देता है और वह 'जलं ब्रह्मः' वही अमृत बन करके, बेटा! देखो वनस्पतियों के रूप में कहीं मानो रसों के रूप में, कहीं ज्ञान और विज्ञान के रूप में मानो देखो वह नाना प्रकार के रूप में परिणत होता है, वही वृष्टि के रूप में कहलाया जाता है।

प्राणियों के कृत्यों से चन्द्रमा का समन्वय

जब, मेरे प्यारे! देखो चन्द्रमा की कान्ति जब प्रजा के, जब समाज के, मानो इस पृथ्वी पर रहने वाले प्राणी मात्र जब पापाचार में परिणत होते हैं तो चन्द्रमा की मानो चतुर्दशी और पूर्णिमा के दिवस उग्र क्रिया धारण करके, देखो समुद्रों से जब मिलान करते हैं तो उस समय मानो देखो कहीं जल-प्लावन प्रारम्भ हो जाते है। मेरे प्यारे! वही जल-प्लावन मानव का, समाज को देखो पाप-पुण्य बन करके उसकी आभा में रत हो जाता है। तो मेरे पुत्रो! प्रभु का कैसा ऊ।चा, कैसा ऊर्ध्वा में, बेटा! यह विज्ञान है। जब हम इस विज्ञान को अपने में मनन और चितन की वेदी पर प्रवेश करते है। तो विचार आता है हे प्रभु! हे देवत्व! तू कितना विज्ञानवेत्ता है। जब मैं तेरे विज्ञान की चर्चा करने लगता हू।, अपने में मनन करने लगता हू। तो कोई मार्ग ऐसा प्राप्त नहीं होता कि मैं अपने में स्वतन्त्र हो करके भ्रमण कर सकू।! हे प्रभु! मैं तेरे ही आश्रित अपने को स्वीकार कर लेता हूँ।

निरभिमानी चन्द्रमा की शिक्षा

मेरे प्यारे! देखो विज्ञान कितना अनूठा है। क्या वही चन्द्रमा की शिक्षा तो इसीलिए वेद का आचार्य, वेद का ज्ञान, हमें यह कहता है 'हे मानव! तू अपने में देखो अभिमान क्यों कर रहा है? मानो 'अभिमानं ब्रहे', वह जो परमपिता परमात्मा की नियमावली है, मानो उसका जो नियम है, उसको अध्ययन में लाओ, क्या चन्द्रमा पूर्णिमा के दिवस सम्पन्न कलाओं से युक्त होता है, षोडश कलाओं से युक्त होता है और वह पूर्ण क्यों होता है क्योंकि वह मानव को शिक्षा देता है हे मानव! तू पूर्ण होने के पश्चात् तुझे अभिमान नहीं आना चाहिए। पूर्णिमा के दिवस यदि पूर्ण होने पर अभिमान आ गया तो तेरे जीवन में अन्धकार आ जाएगा। तेरी मृत्यु हो जायेगी।

मानो देखो, इस प्रकार जब वृत्तियों में मानव रत हो जाता है, तो यह विचारता है कि पूर्णिमा अपनी षोडश कलाओं से युक्त है। मानव भी षोडश कलाओं से युक्त होता रहता है, परन्तु षोडश कलाओं में तुझे अभिमान नहीं होना चाहिए और अमावस्या के दिवस तुझे निराशा नहीं होनी चाहिए। यही तेरे जीवन का अनुपम रहस्य माना गया है।

ऋषि-मुनियों की शिक्षा

मेरे प्यारे! देखो ऋषि-मुनियों का एक ही मन्तव्य है इस वाक्य उच्चारण करने से कि 'हे मानव! तू अपनी मानवीय और मानव दर्शन को तू अपने में धारण करता हुआ तू देवत्व को प्राप्त होता चल। और वह कैसे देवत्व है? मानो देखो जैसे चन्द्रमा है, यह चन्द्रमा अमृत की वृष्टि करने वाला है। यह चन्द्रमा माता के गर्भस्थल में भी वृष्टि करता है, बाह्य जगत् में भी वृष्टि करता है, वनस्पतियों में भी वृष्टि कर रहा है, अन्नाद में भी वृष्टि कर रहा है, मानो देखो वृष्टि करता है तो वह अपने में पूर्णता को प्राप्त हो जाते हैं। वह पूर्ण रूपेण बन गये हैं और पूर्ण रूपेण बन करके वह तेरे द्वार पर आ रहे हैं, क्योंकि वही तो तेरे सखा हैं, वही तो तेरे जीवन की धारा को निर्धारित करने वाले हैं, वही मानो देखो 'अन्नादं भूत प्रह्वा लोकाम्' मेरे प्यारे! देखो वही जन-समूह की प्रतिभा बन करके तेरे द्वार पर आये हैं।

औषध अमृत से कण्ठ पुनर्स्थापन

मेरे पुत्रो! देखो वह चन्द्रमा कितना अमृतमयी है। मानो नाना प्रकार की वनस्पतियों में रसों को प्रदान कर देता है, अमृतमयी बना देता है। यही अमृत, बेटा देखो, जब वैद्यराजों के गृहों में पहुंचोगे तो तुम्हें प्रतीत होगा, ऐसी-ऐसी वनस्पतियां हैं, जो वनस्पति, बेटा! देखो, अमावस्या के दिवस एक पत्तिका से उसका जन्म होता है, एक से द्वितीय और पन्द्रह दिवस के पश्चात् यह पन्द्रह पत्तियों वाली बन जाती है, परन्तु देखो जब वृत्त होता है, मानो देखो जैसे चन्द्रमा की कला घटित में पहुंची अमावस्या के आंगन को चली तो एक-एक पत्तिका समाप्त होती रहती है। अमावस्या को एक भी पत्तिका नहीं रहती।

मेरे पुत्रो! देखो यह कितना विशाल वनस्पति विज्ञान है। वही वनस्पति, बेटा! देखो मानव के जीवन में, उस वनस्पति का नाम रेणावाहासुति कहा जाता है। रेणावाहासुति वह औषध कहलाती है, वही औषध, मुनिवरो! देखो इसमें रेणाखंडिका एक औषध है, जो मानो देखो चन्द्रमा के शुक्ल पक्ष में और कृष्ण पक्ष में जब मानो देखो वह तीस पत्तियों वाली बनती है और उसके पश्चात् एक पुष्प् नक्षत्र की जो छाया आती है, तो उसकी सर्वत्र पत्तिका समाप्त हो जाती है।

मानो देखो उस पत्तिका को ले करके और वह दोनों पत्तिकाओं को ले करके एक सुनेत नामक औषध होती है, बेटा उस सुनेत नामक औषध का अभिप्रायः यह है, कि उसका जो जन्म है, वह मानो देखो पुष्य नक्षत्र में होता है, और रोहिणी नक्षत्र में, मानो देखो रोहिणी नक्षत्र जब तक नहीं आता उसकी पत्तिका, मुनिवरो! देखो बलवती होती रहती हैं और जब 'रोहिणी नक्षत्रं ब्रहे' जब मानो देखो पुष्य नक्षत्र और रोहिणी नक्षत्र का जब मध्य आता है, तो सर्व पत्तिका समाप्त हो जाती है।

इन तीनों औषधियों को जान करके, बेटा! वैद्यराज जानते हैं, इनका अमृत बनाया जाता है और वह ऐसी औषध हैं क्या, मानव के हृदय से मानव के कंठ को शरीर से दूरी कर दिया जाए और छः-छः माह तक उनको, मुनिवरो! औषधियों में नियुक्त कर देते हैं, और उनका रस बना करके अग्नि में तपा करके और छः माह के पश्चात् उन्हीं तीनों औषधियों की लुगदी बना करके और मानो देखो उसे कण्ठ के ऊपरले भाग में नियुक्त करना, वह मानव ज्यों का त्यों स्थिर हो जाता है। तो मेरे प्यारे! इसको राजा रावण के राष्ट्र में सुधन्वा वैद्यराज भी जानते थे। महाराज अश्विनी कुमार भी जानते थे। मानो इसको महात्मा दधीचि भी जानते थे। मैं, बेटा! उनके विज्ञान में जाना नहीं चाहता हूँ। विचार यह, मुनिवरो! देखो यह चन्द्रमा कितना अमृतमयी है।

आज हमें यह उच्चारण करना है कि मानो देखो चन्द्रमा इनको रस देता है। रोहिणी नक्षत्र में किसी प्रकार का रस देता है, पुष्य नक्षत्रों में किसी प्रकार का रस देता है। मानो देखो लगभग नो प्रकार का रस इसमें होता है। नो प्रकार का रस वनस्पतियों में भिन्न-भिन्न समय में प्रदान करता है। मेरे प्यारे! देखो मैं इस सम्बन्ध में विशेषता देना नहीं चाहता हूं, मैं कोई वैद्यराज नहीं हूं, न औषधि विज्ञान में जाना चाहता हूं, अनुसन्धान तो मानव का कर्त्तव्य है, वह करता ही रहता है।

विचार-विनिमय क्या? मेरे पुत्रो! आज हम अंधकार में निराशायुक्त न हो जाएं और प्रकाश में षोडश कलाओं में आ करके हम द्रव्य की लोलुपता में अभिमानी न बन जाएं। ऐसा मानो देखो ऋषि-मुनियों और अतिथिजनों ने देखो इस प्रकार शिक्षा दी। मुनिवरो! देखो जब वह अतिथि द्वार पर आता है, अतिथि इस प्रकार की शिक्षा देता है। तो बेटा! देखो यजमान मानो दम्पति पति-पत्नी उसके चरणों में ओत-प्रोत होते हैं और यह कहते हैं, ''धन्य है, प्रभु! हमारे में जो अन्धकार है, उसे आप ने नष्ट कर दिया है और हमें प्रकाश में पहुंचा दिया है। यह वास्तव में प्रकाश है, जो आपने हमें दिया है।

यही प्रकाश मुनिवरो! एक-एक वेद-मन्त्र के गर्भ में निहित रहता है। यही प्रकाश, मेरे प्यारे मानव के जीवन में जब नृत होने लगता है, तो वेद का ऋषि यही तो कहता है, पूज्यपाद गुरुदेव यही कहते रहते थे कि जैसे नेत्रों का प्रकाश यह सूर्य बन करके आता हैं वनस्पतियों का प्रकाशक बन करके चन्द्रमा आता है वह भी अपना-अपना प्रकाश देते रहते हैं परन्तु देखो उनके गर्भ में भी आध्यात्मिक प्रकाश और भौतिक प्रकाश निहित रहता है।

सूर्य की आभा में यौगिक-गति

मेरे प्यारे! देखो, जब सूर्य की आभा में मानव रत करने लगता है, सूर्य को देवत्व स्वीकार करता हुआ, सूर्य की किरणों का उपयोग करने लगता है, तो मानो देखो रुग्णता को प्राप्त नहीं होता, जब सूर्य की किरणों को समय-समय पर अपने में आहार बन लेता है, तो मानो देखो योगेश्वर की उपाधि को प्राप्त हो जाता है। मानो देखो इसमें भी आध्यात्मिकवाद और आत्मा के समीप जाने वाली जो ज्ञान की रश्मिया। हैं और सूर्य की कृतिका हैं, उसमें जब रत हो जाती हैं, तो वह भी मानो 'असप्रवा वृत्तम्', वह महान बन जाता है।

बाह्य प्रकाश और अन्तः प्रकाश

विचार क्या पूज्यपाद गुरुदेव कहा करते थे कि जैसे नेत्रों का बाह्य प्रकाश यह सूर्य बन करके आता है, इसी प्रकार मानव के अन्तःकरण को प्रकाश देने वाला, बेटा! यह वैदिक ज्ञान है, वेद का प्रकाश है। इसीलिए वेद को हमें प्रकाश स्वीकार करके गति करनी चाहिए। पोथियों का नाम वेद नहीं कहा जाता। परन्तु पोथियों में जो ज्ञान है, विज्ञान है उसमें जो कृतिका हैं, मेरे प्यारे! देखो उसका नाम ज्ञान है। वह ज्ञान पृथ्वी मंडल पर हो, चाहे वह चन्द्रमा में हो, चाहे वह बुध में हो, चाहे वह शुक्र में हो, परन्तु ज्ञान एकोकी रहता है उसमें भिन्नता नहीं आती।

पृथ्वी, आपो और तेजस् का ज्ञान सूत्र

मेरे प्यारे! देखो मैं विशेषता न देता हुआ, आज तुम्हें एक वाक्य उच्चारण करने के लिए आया था विशेषकर यह, पुत्रो! मैंने तुम्हें कई कालों में वर्णन कराया था, कहीं गंभीर मुद्रा में हो, करके परन्तु आज भी वह वाक्य मुझे स्मरण आ गया। वेद का मन्त्र भी आ रहा था कि वेद में बहुत-सा ज्ञान इस प्रकार का है, जहां मानव, वहां जा नहीं पाता है। परन्तु देखो आज का 'वेदं ब्रह्मः' वेद-मन्त्र आ रहा था और वह वेद-मन्त्र यह कहता था कि जो सूत्र मानो पृथ्वी से गति करता है वहीं सूत्र मानो देखो 'ब्रहे' वह सूत्र आपोमयी ज्योति में समन्वय करता है, और वही सूत्र मानो देखो, आपो से तेजोमयी में प्रवेश करता हुआ, और वही लोक-लोकान्तरों में गमन करता है और वह जैसा वेद का ज्ञान हम स्वीकार करते हैं। उससे ऊर्ध्वा में मानो देखो 'जलतर प्रभवः', जो हमारे यहां तेजोमयी कहलाते हैं प्रकाश वाले मण्डल हैं, उनमें यहां ये विशेष होता है और जो मानो अग्निमयी, तेजोमयी कहलाते हैं वहां उसमें विशेष होता है।

जैसे आज हम यह कल्पना करने लगे कि देखो सूर्य मंडल में जो प्राणी मात्र रहता है उसका ज्ञान बड़ा अनुपम है मानो देखो वह अपने में विष्णु राष्ट्र ''प्रहा'' क्योंकि विष्णु हमारे यहां सूर्य को कहते हैं और सूर्य-मंडल में मानो जो प्राणी मात्र है, उसका वेद का ज्ञान बड़ा अनुपम और विचित्र, वेद विज्ञान से गुथा हुआ है, इसी प्रकार मंगल मण्डल में भी मानो तेजोमयी की प्रतिभा न रह करके वह कृति कुछ सूक्ष्म है, पार्थिवता रहने से, यहां से उसका ज्ञान और विज्ञान भी ऊर्ध्वा में है, तो वेद का मन्त्र कहता है कि इसके ऊपर प्राणी को जाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। तो मानो देखो वेद में इस प्रकार की प्रतिभा हैं। इस प्रकार के मानो संकेत हमें प्राप्त होते हैं, जिसके ऊपर मानव को वास्तव में गमन करना चाहिए।

वेद में विज्ञान-धराएं

मेरे प्यारे! देखो, विज्ञान की धाराएं इस वैदिक साहित्य से जन्म ले करके उनके मस्तिष्कों में एक परमाणु को जानते ही, दूसरा परमाणु, जो उस सूत्र में आने वाला है, उसका समन्वय होता है और उसके ऊपर वह मानव विचार करने लगता है और चिन्तन करने लगता है और चिन्तन करता हुआ देखो उसके अन्तिम चरण पर वह मानो 'ब्रहे' अपने पर आधिपथ्य कर लेता है।

मार्कण्डेय-यन्त्र

मानो जैसे हमारे यहां पुरातन काल में, बेटा! तुमने महर्षि मार्वेफण्डेय जी को दृष्टिपात् किया होगा। मार्वेफण्डेय जी ने एक परमाणु को एक समय जाना था। उस परमाणु का नाम था 'ऋणीक्रांत परमाणु' उस परमाणु को जाना तो जहां वह पृथ्वी का परमाणु और चन्द्रमा का परमाणु मिलन करता था, वहां वह परमाणु स्थिर हो जाता है, मानो देखो उसमें उन्होंने जाना की जहां चन्द्रमा और पृथ्वी की दोनों सीमा है, वहां एक आश्रम का निर्माण किया जा सकता है, परमाणुवाद के द्वारा, तो मार्वेफण्डेय मुनि ने इन्हीं से यन्त्रों का निर्माण किया और यन्त्रों का निर्माण करके जहां चन्द्रमा और पृथ्वी की सीमा है,वहां जा करके अपने यान को स्थिर कर दिया था, जहां छः माह तक मानो देखो माता पार्वती और शिव ने जा करके विज्ञानमयी अपने जीवन को बनाया।

निरभिमानता का प्रकाश से सम्बन्ध

बेटा! मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा न करता हुआ, केवल तुम्हें उन वाक्यों पर ले जाना चाहता हू। कि हमारे यहां मुनिवरो! देखो जितना भी ज्ञान और विज्ञान है उसमें रत रहने से मानो अभिमान की मात्रा रहती ही नहीं। क्योंकि परमात्मा का ज्ञान बड़ा अनन्त है, वेद का ज्ञान बड़ा अनन्त है और जब अनन्तता के ऊपर विचार करने लगते हैं तो यह जो संकीर्ण द्रव्य है, यह हमें अभिमानी नहीं बना सकता। मेरे प्यारे! देखो अभिमान जब करता है, तो उस मार्ग से मानो देखो, हम अपने मार्ग को त्याग करके, अन्धकार के मार्ग पर आ जाते हैं, परमात्मा को अपने से दूरी कर देते हैं। तो मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चा न करता हुआ, यह तो बेटा! विचारों का बड़ा विशाल, वन है। विचारों का बड़ा एक महत्वदायक एक मानो देखो नृत्य हो रहा है। इस ब्रह्माण्ड में इस नृत्य की चर्चा तो, बेटा! हम करते रहते हैं।

आज का विचार क्या? कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, अपनी वैदिकता को अपना करके अपने में अन्धकार और प्रकाश को हम मानो देखो, दोनों को एक सम जानने वाले बनें। यह है, बेटा! आज का वाक्य। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और वेद को हम मानो अपने अन्तःकरण का प्रकाश और सूर्य को बाह्य जगत् का प्रकाश स्वीकार करते हुए अपने क्रियाकलापों में हम सदैव तत्पर रहें, बेटा! यह मैंने एक अतिथि की वार्ता प्रकट की है। कल मुझे समय मिलेगा तो मैं अतिथि की चर्चा और भी कर पाऊ।गा। परन्तु विचार आता रहेगा, प्रकट करते रहेंगे। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन वझीलपुर, हापुड़।

८ देवत्त्व प्राप्ति 22 03 1988

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुण-गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद-वाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुण-गान गाया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा सर्वज्ञ है और जितना भी ज्ञान, चाहे परोक्ष रूप में हो, चाहे वह प्रत्यक्ष में हो, परन्तु सर्वत्रता में वह विद्यमान रहते हैं। हमारा जो मानवीय जीवन है, वह उस महान् उस चेतना में रत हो रहा है, जिस चेतना को जानने के पश्चात् मानो और कोई चेतना नहीं जानी जाती। वह चेतना मानवीयत्व में क्या ब्रह्मांड की प्रत्येक आभा में निहित रहती है।

आज का हमारा वेद-मन्त्र बड़ी ऊंची-ऊंची उड़ानें उड़ रहा था और ऐसी वार्ता प्रगट कर रहा था जिससे मानव का जीवन ज्ञान और विज्ञान में सदैव रत रहा है और उस ज्ञान और विज्ञान की वार्ताओं को अपने में धारण करता रहा है और विज्ञान की अनूठी-अनूठी उड़ानें मानव अपने में उड़ान उड़ता हुआ इस सागर से पार होने का प्रयास करता रहा है। मानो हमारे यहां भिन्न-भिन्न प्रकार की वार्ताओं का स्पष्टीकरण होता रहता है और उन शब्दों में मानो देखो एक आभा, मानवीय जीवन का ज्ञान और उसका विज्ञान और मानो उसके जीवन की मानवीय पद्धति का रहस्यतम उद्गीत गाया जाता है।

संसार रूपी यज्ञशाला

आज के हमारे वैदिक पठन-पाठन में मानो देखो यजमान का बड़ा वर्णन आता रहा है। प्रायः हमारे यहां यज्ञमान के सम्बन्ध में बड़ी ऊंची-ऊंची उड़ाने उड़ी जाती हैं। जैसे, इसका परमात्मा का रचाया हुआ यह यज्ञोमयी उद्गीत गाने वाला जो ब्रह्मांड है, यह एक यज्ञशाला के रूप में विद्यमान रहता है और इस यज्ञशाला का जो यजमान है, वह आत्मा हैं, और वह जो ब्रह्म है, वह इसका ब्रह्मा बन करके इसका नियमन कर रहा है, मानो इसको गतिवान बना रहा हैं क्योंकि यह ब्रह्मांड का एक-एक कण, एक-एक परमाणु गतिवान् होता हुआ दृष्टिपात् आता है ओर एक-दूसरे में पिरोया हुआ है, एक-दूसरे में कटिबद्ध हो रहा है। तो मानो, बेटा! यह एक अभ्युदय और इस संसार रूपी यज्ञशाला के ऊपर ऋषि-मुनियों ने बड़ी ऊंची-ऊंची उड़ानें उड़ी हैं।

देव-पूजा

आज मैं इस सम्बन्ध में कोई विवेक या अपना विचार नहीं प्रगट करने नहीं आया हूँ। विचार केवल यह है कि आज का हमारा वेद-मन्त्र, जो यज्ञशाला में यजमान विद्यमान है, वह यह कहता है, ''आओ, देवी! देव-पूजा करने के लिए तत्पर हो, मानो देवयाग करने के लिए तत्पर हो। जिस प्रकार हम प्रातःकालीन, मध्यरात्रि के अन्तिम पहर में हम प्रायः ब्रह्म-याग करते रहते हैं ओर अपनी प्रत्येक इन्द्रियों को उस महान परमपिता परमात्मा के गुणों से उनको गठित करते रहते हैं मानो उसमें वह कृतियों में रत रहने वाली इन्द्रियां है परन्तु इसी प्रकार, आओ हम देव-पूजा करें। क्योंकि देवयाग करने का नाम देव-पूजा कहलाती है।''

हमारे ऋषि-मुनियों ने बहुत पुरातन काल हुआ, बेटा! विद्यालयों में एक सभा हुई, उस सभा में मानो देखो, ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मविचारक, ब्रह्मचारी और ब्रह्मश्रोत्रीय और जिज्ञासु मानो देखो उस सभा में विद्यमान थे। तो सभा जब एकत्रित हुई तो उसमें महर्षि श्वेताश्वेतर को उस याग की अध्यक्षता मानो वृत्तियों में रत की गई और यह कहा कि यह जो समाज है, साधारणत्व यह समाज केसे ऊंचा बने? कौन-सा क्रियाकलाप ऐसा है, जिस क्रियाकलाप को अपनाने के पश्चात् मानो अपने में क्रियाशील हो करके अपना आत्मोत्थान हो और आत्मोत्थान जब होता है जब कि

यह लोक पवित्र बन जाता है, लोक में हम प्रियता को प्राप्त हो जाते हैं। तो उसके पश्चात् हमारा यह मानवीयत्व, पवित्रता को प्राप्त हो जाते हैं। तो इसके ऊपर विचार-विनिमय किया जाये कि कौन-सा क्रियाकलाप ?

मेरे प्यारे! देखो इसमें भिन्न-भिन्न ऋषियों के विचार, मानो देखो देवपूजा के सम्बन्ध में, महर्षि प्रद्वाण जी उपस्थित हुए और प्रद्वाण जी ने यह कहा कि ''मेरे विचार में यह आता है कि जन-समूह के लिए एक पद्धति बना देनी चाहिए और जिस पद्धति के आधार पर वह अपने जीवन को सदैव नवीन स्वीकार करता रहे''। उन्होंने कहा, ''मेरे विचार में यह आता है कि यह जो मानो देखो देवपूजा का नृत्य है, यह ऋषि-मुनियों का और वैदिकता का मानो देखो एक, मान-बलोवृत्ति कहलाता है, इसके ऊपर प्रायः विचार-विनिमय होना चाहिए''।

मेरे पुत्रो! देखो, यह वाक्य स्वीकार किया गया और विचारने लगे कि यह पद्धति कैसे बने? तो मेरे प्यारे! देखो उन्होंने अपने विचार देते हुए महर्षि वैशम्पायन ब्रह्मवेत्ता ने यह कहा कि जितनी भी मानवीय पद्धति है, उन पद्धतियों में एक मानव-कर्मकाण्ड की स्थापना होनी चाहिए, क्योंकि कर्मकाण्ड में ही मानव कटिबद्ध हो करके, उन क्रियाओं में सफलता को प्राप्त कर सकता है। जिन क्रियाओं में मानो देखो देवताओं का समूह विद्यमान रहता है। तो मुनिवरो! देखो यह निर्णय देते हुए अग्रणीय अपने विचार-विनिमय की प्रतिभा का एक स्रोत, घृत उत्पन्न होने लगा। ऋषि-मुनियों में एक उत्साह, एक उल्लास इस पद्धति के लिए था तो नाना ऋषि-मुनियों ने एक ही अपना विचार दिया कि देवपूजा होनी चाहिए।

जड़-चेतन देवता

देवता कौन-कौन हैं? उन देवताओं की गणना में लग जाना चाहिए। मेरे पुत्रो! देखो, उन देवताओं के लिए निर्णय देने के लिए शुभावेतु ऋषि महाराज ने कहा कि ''यह जो मानवीय पद्धति है, 'अस्वतम् देव-पूजा' है, देवता हमारे दो प्रकार के होते हैं, एक जड़वत होता है और एक चेतनावत होता है। मानो देखो, चेतना में हमारे देखो देवता वे पितर कहलाते हैं, जैसे माता है, पितर है, आचार्यजन हैं, अतिथिजन हैं, ब्रह्मवर्चोसि हैं, जो मानव को ऊर्ध्वा में शिक्षा दे करके, जो पुरोहितजन हैं, वे हमारे मानो देवता कहलाते हैं और उन देवताओं के प्रति हमें अगाध प्रीति रहनी चाहिए। उनका पूजन करना चाहिए।

चेतन देवताओं की पूजा

पूजन का अभिप्रायः, पूजन कहते हैं, उनका यथोचित स्वागत किया जाये और उनको अपने हृदय में, उनके ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा को अपने में धरण करते हुए वह, मानव उसका प्रसार उसका चलन करता है, वह उनकी आज्ञा का पान करता है, तो उनको पूजा कहा जाता है। पूजा का अभिप्रायः यह नहीं है कि आज हम मानो देखो उसके चरणों की वन्दना कर रहे हैं और उसकी आज्ञा का पालन नहीं कर रहे है। तो चरणों की वंदना से कोई लाभ नहीं है, देखो वह लाभप्रद नहीं है, लाभप्रद उसी काल में होगा जब भी मानो उसके विचारों को और उसकी मान्यताओं को ऊाचा बनाने का प्रयास करेगा।

देवप्रवृत्ति

परन्तु विचार आता है, वह कैसे माने जाये मानो पितरगण भी हमारे इतने ऊर्ध्वा में, वे देवत्व प्रवृत्ति वाले हो। देवता प्रवृत्ति वाले कौन होते हैं? जैसे माता की अपने में देवप्रवृत्ति वाली विचार धारा आती है। माता को देवता के रूप में स्वीकार करते हैं। माता भी वास्तव में माता है, निर्माण करने वाली विचित्रत्व हो जैसे माता मल्दालसा के जीवन की गाथाए। स्मरण आती रहती हैं। आता मल्दालसा मानो देखो बाल्यकाल में वह वेद का अध्ययन करती थी, अध्ययन करते हुए मानो देखो जब वह 'अमृतम्' मानो देखो मनुवंश में उसका संस्कार हुआ तो वह जब

प्रथम गर्भ बालक का था देखो वह 'गर्भाशय उष ब्रह्म', जब उसमें एक शिशु का प्रवेश हुआ, तो माता मानो देखो प्राण के द्वारा तपस्या करती थी।

प्राण-सखा

विचार आता है कि वह प्राण तपस्या क्या है? मेरे पुत्रो! देखो प्राण को हम जानना चाहते हैं प्रत्येक मानव परम्परागतो से बेटा! प्राण की आभा में लगा हुआ है, मानो देखो माताएं तो बाल्यकाल से विद्यालय से ही जाना करते हैं ब्रह्मचारी जन भी, कि प्राण अपने में प्राणत्व में कहलाता है। यह प्राण नाभि से ले करके, मानो देखो कण्ठ के भाग से होता हुआ, यह नासिका के द्वारा बाह्य-जगत् में जाता है, और बाह्य-जगत् में जब प्रवेश करता है तो बाह्य जगत् से यह मानो देखो, शुद्धिकरण करता हुआ प्राण-सखा को परमाणुवाद को यह ऊर्ध्वा देखो अपने आन्तरिक जगत् में ले जाता है और अन्तर्जगत् में ले जा करके उसको प्राण कहते हैं।

अपान-गति

मेरे प्यारे! देखो यह प्राण का नीचे सम्बन्ध अपान से हो जाता है। जितने भी मानो संसार में जो बा"य जगत् में या आंतरिक जगत् में जितना भी मानो देखो ऊर्ध्वा में गति कराने वाली वृत्तिया। हैं, मानो वह अपान-प्राण की मानी गई हैं। चाहे वह जलाशय हैं चाहे, वह मलवृता है कोई भी क्रियाकलाप हो जो दूर जाने वाला है, वह अपान का ही व्रेफय है। अपान को ही उसका श्रेय माना गया हैं। जब अपान और प्राणों का दोनों का समन्वय हो जाता है, तो मानो देखो वह अपने अन्तर्हृदय और अर्न्तजगत् को दृष्टिपात् करने लगता है।

ब्रह्मवेत्ता-निर्माता माता मदालसा

बेटा! माता मल्दालसा, जब मानो देखो जेठा पुत्र गर्भ में था तो उसे मानो देखो प्राण सखा के द्वारा और मन की पुट लगा करके, बेटा! उसे अन्तरात्मा में, अन्तर्हृदय में बेटा! दृष्टिपात् करने लगी। अन्तरात्मा से अन्तर्हृदय को प्रायः दृष्टिपात् किया जाता है, जहां वह शिशु पनप रहा है, जहां देवता मानो देखो, देवत्व को प्रदान कर रहे हैं, देवता अपने में देवत्त्व बन रहे हैं। तो मानो देखो माता मल्दालसा अपने में शान्त मुद्रित हो करके उसको दृष्टिपात् करती रहीं। मेरे प्यारे! देखो माता के हृदय में यह कामना रही कि ''मेरा अन्तरात्मा में, जो मानो गर्भाशय में जो शिशु पनप रहा है, वह शिशु इतना महान और प्रबल और विचित्र होना चाहिए, मानो देखो, वह जिससे मेरे जीवन का साथी बनकर रहे, मेरे जीवन को ऊर्ध्वा गति देने वाला हो, मेरे जीवन को मानो देखो परमात्मा तक क्या, उनकी वृत्तियों में रत रहना चाहिए''। ऐसी विचारधारा, बेटा! माता मल्दालसा की देवपूजा के सम्बन्ध में रही है।

मानो बेटा! देखो, मुझे ऐसा स्मरण है कि माता जब अन्तरात्मा को कतियों में रत करा देती है और जब वह बाल्य बा"य-जगत में आता है तो मानो देखो, बेटा! माता उसे पालन-पोषण करती हुई, लोरियों को जब पान कराती है, तो मनोनीत इच्छा यह होती है माता प्रसन्न हो करके और वह वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते हुए वेद-ध्वनियों में, स्मृतियों में और उपनिषदों में रत करते हुए मानो देखो बालक को जब वह अपना रस प्रदान करती है, रस में रस का समन्वय कर देती है, तो मेरे प्यारे! देखो, वह बाल्य, ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए अग्रसर हो जाता है।

मेरे प्यारे! देखो माता मल्दालसा की एक बड़ी विचित्र धारा रही है, जो किसी माता ने इतनी ऊर्ध्वा में विचारधारा नहीं दी। माता मल्दालसा यह कहा करती थी ''कि मेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाला बाल्य यदि संसार के रजोगुण-तमोगुण में ही लगा रहा तो मानो देखो मेरा गर्भाशय ऊँचा नहीं बनेगा। मेरा गर्भाशय उस काल में ऊँचा बनेगा, जब मेरा बाल्य ब्रह्मवेत्ता हो करके और मानो ब्रह्म-विद्या का प्रसार करने वाला हो और वह ज्ञान और

विज्ञान में उड़ान उड़ने वाला हो और वह परमात्मा के हृदय से अपने हृदय का समन्वय करने वाला हो। वह बाल्य मेरे अन्तरात्मा के भाव को ऊर्ध्वा गति करा सकता है''। यह माता मल्दालसा का मानो एक महान् विचार था।

देवपूजा का अभिप्रायः यह है कि वह 'देव पूजां ब्रह्मः' वह माता देवता है, जब बाल्य उसके अनुकूल कर्म करता है, माता की आज्ञा का पालन करता है, तो माता उसे आज्ञा देती है जिस आज्ञा से उसका नामोकरण भी ऊर्ध्वा में हो और बाल्य अपनी स्थलियों में पवित्र होता रहे।

मेरे प्यारे! मैं तुम्हें विशेषता में नहीं, मानो देखो माता मल्दालसा प्रायः देखो इस प्रकार का तप करती, आत्मा को कहती रहती ''हे शरीर में आने वाली आत्मा! तू आत्मा हैं तू आत्मज्ञान में रत रहने वाली आत्मा है। हे आत्मा! तू सदैव अखण्डता में रत रहने वाला है तेरा ्रास नहीं होता है। तू अन्धकार में नहीं है, तू सदैव प्रकाश है, प्रकाश से तेरा समन्वय रहता है। प्रकाश में प्रकाश का जब मिलन होता है तो हे आत्मा! तू आत्मवत् बन करके प्रभु को प्राप्त करता है।''

देव प्रवृत्ति माता की पूजा

मेरे प्यारे! देखो जब माता इस प्रकार का विचार अपनी लोरियों में, अपने गर्भाशय में जब माता प्रदान करती है, वह माता मानो देवता कहलाती है। वह केसी माता है? कि जिस माता ने अपने निर्माण, अपनी विचारधारा विचार देने में, मानो देखो अग्रणीय रही है, उसी विचार को देने वाली माता देवता कहलाती है। अब मानो देखो उसकी आज्ञा का पालन करना, उसकी आज्ञा में रत रहना, यही, बेटा! उस माता की प्रथम पूजा मानो देखो जो देव-पूजा में रत रहने वाली है।

पंचवर्षीय निर्माण में अतुल्य शिक्षा

मेरे प्यारे! देखो हमारे यहां सिद्धान्त में कहते हैं, विचारधारा वाले कहते है कि पांच वर्ष तक जो भी माता निर्माण कर देती है, वह निर्माण कर देती है, परन्तु देखो वह न विद्यालयों में, विशाल से विशाल विद्यालयों में वह शिक्षा प्राप्त नहीं होती। वह आचार्य भी उस शिक्षा को प्रदान नहीं कर सकता, जो माता अपनी अन्तरात्मा से अपने अन्तर्हृदय से उसे भरण कर देती है और उज्ज्वल बना देती है। मेरे प्यारे! देखो वह माता केसी उज्ज्वल माता है! आज मैं उस माता को देवता के रूप में स्वीकार करता रहता हूँ।

मानव-गर्भावस्था के नो मास क्यों ?

मेरे प्यारे! यहां वेद के बहुत से मन्त्र हैं इस प्रकार के आज मैं बेटा! इस विचारधारा में न जाता हुआ विचार केवल यह, मुनिवरो! माता जिस समय गर्भाशय में बाल्य होता है, तो उसकी नो माह की अवधि होती है, नो माह तक मानो देखो 'नवं नमं ब्रह्मे', बेटा! परमपिता परमात्मा ने केसा विचित्र! देखो नो पदार्थ इस संसार को स्थिर किये हुए है और नो तक मानो गणना कहलाती है, जब मानव गणित तक जाता है तो नो तक गणना करता है, और नो के पश्चात् मानो देखो आगे गणना नहीं रहती, इसी प्रकार परमपिता परमात्मा का केसा नियम मानो केसा उसका नृत्य हो रहा है! बेटा! माता के गर्भस्थल में नो माह तक बाल्य रहता है।

मेरे प्यारे! देखो नो माह तक बाल्य का निर्माण होता है और उसी प्रकार मानो देखो निर्माणशाला में, 'ब्रह्मणे वृत्तम्', मेरे प्यारे! देखो ज्ञान और प्रयत्न काल और दिशा, पंच महाभूत, ये नो कृतियां कहलाती हैं, परन्तु देखो जब, 'वर्णनं ब्रहे', मेरे प्यारे! देखो, वह उसी में रत होता रहता है। माता तू इसके ऊपर भी तो विचार कर कि तेरे गर्भ में हम जैसे शिशु नो माह तक ही क्यों पनपते रहते हैं? नो माह तक क्यों पनपते हैं, क्योंकि नो तक तो संसार की गणना है। जितनी भी गणना है, वह नो तक कहलाती है। मानो देखो नो प्रकार की धाराएं हैं और

नो ही मानो देखो सूर्य की रश्मिया। भी हैं। कहीं-कहीं सात प्रकार की रश्मिया। माना है, कहीं-कहीं नो प्रकार की रश्मियों को स्वीकार किया है।

चन्द्रमा की अमृत-विष-अवान्तरी धरा

चन्द्रमा की भी मानो देखो नो प्रकार की अमृतमयी धाराए। हैं। कहां किसको, केसा अमृत देना है, कहां अमृत जा करके विष बनना है, वह विष भी उसके लिए अमृत है। संसार के लिए द्वितीय के लिए विष कहलाता है, परन्तु जहां विष जा रहा है, वहां उसके लिए, वह अमृत बन रहा है। मेरे प्यारे! देखो यह चन्द्रमा अमृत भी देता है और अमृत कहीं-कहीं विष बनता है, कहीं-कहीं अमृत बनता है। परन्तु उसके लिए अमृत भी विष कहलाता है और विष भी अमृत का रूप धारण कर लेता है।

गर्भ निमार्ण के लिए औषध और अन्न विचार

मेरे प्यारे! देखो बड़ी विचित्र रचना है मेरे देव की। मेरा देव केसा वैज्ञानिक है! बेटा, जब उस विज्ञानवेत्ता के ऊपर विचार-विनिमय प्रारम्भ होता है, तो हृदय गद्गद् हो जाता है और हम यह कहा करते हैं, 'ब्रह्मणे वृत्तं देवाः' वह माता देवता कहलाती है, जो इस प्रकार का, मानो देखो नो प्रकार की औषध प्रत्येक माह में, वह एक-एक औषध का पान करती है। कहीं देखो प्रारम्भ में बालक का रस परिपक्व बनता है, त्रिवर्धा में परिपक्व बनता है, उसके पश्चात् मानो देखो वही रस स्वतः निर्माण होने लगता है, परमात्मा के नियम के आधार पर परन्तु इन्द्रियों का निर्माण होने लगता है और इन्द्रिय में जो-जो ओजस्त्व तेजस्त्व जाना है उसका वृत्त अपने में ही स्वतः जाना प्रारम्भ हो जाता है। वेदाचार्य यह कहते हैं कि जब मानो देखो प्रत्येक माह का औषध इस प्रकार का है, जो माता को पान करना चाहिए। विचारों से पान करना चाहिए। माता यह चाहती है कि 'मेरे गर्भ में ब्रह्मवेत्ता का जन्म हो', तो उसी प्रकार का विचार उसी प्रकार का अन्न, उसी प्रकार का औषध होना चाहिए। माता यह चाहती है, 'मेरे गर्भ से राष्ट्रवेत्ता का जन्म हो', तो उसी प्रकार का औषध उसी प्रकार का मानो देखो अन्न होना चाहिए।

गर्भस्थ राम के लिए नो मासों की औषधियाँ

मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता है, मैं तुम्हें दूर नहीं ले जा रहा हू। मानो देखो मुझे वह काल स्मरण है, त्रेता का काल। जब बेटा! देखो माता कौशल्या अपने में मानो देखो राम जब गर्भस्थल में थे, तो प्रथम जब माह हुआ, तो उस समय माता कौशल्या एक समय महर्षि वशिष्ठमुनि के आश्रम में विद्यमान हुई और देखो महर्षि वशिष्ठमुनि महाराज ने कहा "प्रभु! मुझे औषध प्रदान कीजिए"। मेरे प्यारे! उन्होंने देखो एक औषध दिया, उस औषध का नाम था, ऋणीती मानो, मरीची, कृतिका मानो इन तीन औषधियों का पान उन्होंने एक माह तक किया और द्वितीय माह का देखो, शैलखडा, मरीची मानु और देखो मेकेतु ये तीन औषधियों को तपा करके यह द्वितीय माह में पान कराया गया और देखो तृतीय माह में शैल मृचिका, बडकेतरी और पीपली प्राणन्ध, मानो देखो इनको ले करके वह तृतीय माह में प्रदान कराया और चतुर्थ माह में मानो देखो वहान्तकेतु सुरीची और ग्रहणं कान्तकेतु मानो इन औषधियों को ले करके वह पान कराती रही। पंचम् माह जब आया तो मेरे प्यारे! सूर्य की प्रार्थना करते हुए उन्होंने सूर्य एक वृक्ष होता है, उस सूर्य वृक्ष का पंचांग ले करके, मानो देखो उसे अग्नि में तपा करके उसका एक माह तक पान करती रही। मानो देखो जब छठा माह आया, तो मेरे प्यारे! वह वट वृतिका, वट का पंचांग, उन्होंने पान किया। वट और जाल और महंत इन तीनों वृक्षों को ले करके इनका पंचांग बना करके छठे माह में उसका निर्माण, करती हुई पान करती रही। जब, बेटा! देखो सप्तम् माह का दिवस आया, तो चन्द्रकेतु, चन्द्र स्वाहांगणी और चन्द्रभूमकेतु मानो देखो प्रातःकालीन, क्या देखो वह पूर्णिमा के अंगसत्रों में, वह शुक्ल पक्ष में,

अमावस्य, से ले करके मानो पूर्णिमा तक पान करती रही। तो इसी प्रकार, मेरे प्यारे! देखो, अष्ट माह में प्रभु की उपासना करते हुए उन्होंने बेटा! सोलंद, धानकेतु चीकान्न, मेरे प्यारे! इन औषधियों का पात बना करके पान करती रही। तो परिणाम, मेरे पुत्रो! नो माह में वह प्रभु की उपासना करते हुए, मानो देखो बुद्धितल पर देखो अपने ब्रह्मरन्ध का ध्यानोवस्थित होती हुई, मेरे पुत्रो! देखो वह पूर्णिमा के दिवस एक रात्रि जागरूक हो करके, और मानो ब्रह्मरन्ध्र में वह चन्द्रमा का ध्यानावस्थित होती रही। तो मेरे प्यारे! वह यह चाहती थी, विचार वह बना रहा कि ''मेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाला बाल्य, त्याग और तपस्या में परिणत होना चाहिए।

अव्याकुलामाता

मेरे प्यारे! देखो माता का कितना देवत्त्व होता है। वह माता वास्तव में देवत्व है जिस माता का इतना पुरुषार्थ होता है, इतना परिश्रम किया जाता है। हे माता! तू वास्तव में देवी है! हे माता! तू वास्तव में दिव्यासे है। जब तू इस प्रकार बालक को जन्म देती है, तो माता, तेरे आगे तेरा पुत्र सदैव बना रहता है, तेरा पुत्र मानो मृत्यु को प्राप्त नहीं होता।

मेरे प्यारे! देखो मुझे वह काल स्मरण है, राम का देखो वह काल ऐसा था, जिस काल में माताओं की पवित्र शिक्षा ऊर्ध्वा में रही है, उस काल में, माता ने ऐसे पुत्रों को जन्म नहीं दिया, जो माता के आगे पुत्र समाप्त हो जाये और माता अपने में व्याकुल होती रहे। माता शब्द तो सदैव प्रसन्न करने का है, माता शब्द तो देवताओं का शब्द है, यह तो ममतामयी रूपों का शब्द है। मानो देखो, यदि माता व्याकुल होती है पुत्र के लिए तो माता की तपस्या में सूक्ष्मता रह जाती है।

तो मेरे प्यारे! देखो मुझे बहुत-सा काल स्मरण आता रहता है मानो देखो एक काल ऐसा रहा है, जिस काल में माता व्याकुल नहीं हुई है। न पति से व्याकुल हुई है, न पुत्र से, न पुत्री से। सदैव मानो जिस सन्तान को जन्म दिया है, औषध द्वारा, औषध विज्ञान के द्वारा ज्ञानवेत्ता बन करके। उस माता का, बेटा! देखो सुहाग मानो सदैव अखण्ड रहा है, पुत्रवत् सदैव अखण्ड रहा है, पुत्रीवत सदैव अखण्ड रहा है। मेरे पुत्रो! देखो, मुझे बहुत-सा काल स्मरण आता रहता है, आचार्यजन प्रातःकालीन सायंकाल को शिक्षा देते रहते थे।

माता कौशल्या की देव प्रवृत्ति

मेरे पुत्रो! देखो मैं बहुत दूरी चला गया हूँ। विचार देना हमारा यह क्या, माता कौशल्या अपने में तपस्या करती रहती थी और वह अपने में मानो देखो कला-कौशल करके मानो द्रव्य का पान करती थी। बेटा! मुझे वह काल स्मरण है जब माता कौशल्या कला-कौशल करके अपने उदर की पूर्ति करती थी। उस अन्न को पान करती थी, जिसमें पुरुषार्थ हो, जिसमें मानवीयत्व हो। मेरे प्यारे! देखो माता बड़ी प्रसन्न रहती। उस समय राजा दशरथ को यह प्रतीत हुआ कि कौशल्या राष्ट्र का अन्न ग्रहण नहीं कर रही है, वह क्षुधा से पीड़ित तो नहीं रहती है ?

एक समय बेटा! राजा राजगृह में पहुंचे तो माता कौशल्या ने उनके चरणों की वन्दना करते हुए आसन् दिया और कहा ''आईये, भगवन्! विराजिये'' वह विराजमान हो गये। देवी ने कहा, ''प्रभु! अकारण तुम्हारे आने का मूल कारण क्या है?'' उन्होंने कहा, ''देवी! मैं इसलिए आया हू। कि मैंने यह श्रवण किया है कि तुम राष्ट्र का अन्न ग्रहण नहीं कर रही हो ?'' उन्होंने कहा, ''हां भगवन्! मैं ग्रहण नहीं कर रही हूँ।'' उन्होंने कहा, क्यों ? उन्होंने कहा, ''यह राष्ट्र का जो अन्न होता है, यह तमोगुण, रजोगुण, सतोगुण से सना हुआ होता है, इसलिए मैं इस अन्न को ग्रहण करना नहीं चाहती। मैं सात्विक अन्न को ग्रहण करना चाहती हू।, जो मैं पुरुषार्थ करती हू। कला-कौशल करती हुई और कला-कौशल के बदले जो अन्न आता है, मैं उसको पान करती रहती हू। प्रभु!'' तो

दिव्य ज्ञान

मेरे प्यारे! यह वाक्य जब राजा ने श्रवण किया तो राजा ने अपने हृदय में मानो कुछ दुःखद अनुभव किया और यह अपने में विचारने लगे, 'मानो यह देवी तो अपने में यथार्थ है, परन्तु क्षुधा से पीड़ित तो नहीं रह पाती और राष्ट्र का अन्न तो उन्हें ग्रहण करना ही चाहिए।' क्योंकि राजा के हृदय के विचार थे एक तो राष्ट्रीय अन्न ग्रहण करने से गर्भ से उत्पन्न होने वाला बाल्य राजा बनेगा, एक विचार था यह इसके गर्भ में सात्त्विक ब्रह्मवाचक देखो राष्ट्र की सेवा करेगा। तो मानो राजा के हृदय में ये विचार थे।

राजा इन विचारों को ले करके एक समय सायंकाल के समय बेटा! देखो, महर्षि वशिष्ठमुनि के आश्रम में पहुंचे और महर्षि वशिष्ठमुनि महाराज और माता अरून्धती प्रायः प्रातःकाल और सायंकाल अपना ब्रह्मविचार करते रहते थे, ब्रह्म में चिन्तन होता रहता। परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान के ऊपर विचार-विनिमय करते रहते। मेरे प्यारे! देखो, दोनों अपनी स्थली पर विद्यमान हैं परन्तु देखो, वह ऋषि अपने आसन पर विद्यमान हो गये। 'ब्रह्मणे ब्रह्मः' वे दोनों अपना विचार करते रहे और माता अरून्धती कहती थी ''प्रभु! यह जो बाल्य-समाज हमारे विद्यालय में अध्ययन कर रहा है, यह विद्यालय में अध्ययन करता हुआ मानो यह पूर्णत्व को प्राप्त होना चाहिए।'' मेरे प्यारे! माता अरून्धती कहती है, विज्ञानवेत्ता होने चाहिए जिससे धनुर्याग भी सम्पन्न हो।'' मेरे प्यारे! महर्षि वशिष्ठकहते थे, ''हे देवी! हे दिव्यासे! मानो जैसे हमारे विचार आन्तरिक रहेंगे और बाह्य ऊंचे विचार रहेंगे तो बाल्य उसी के अनुसार अनुसरण करते रहेंगे। इसीलिए हमारे विद्यालय को तभी ऊंचा होना है जब कि हमारे-तुम्हारे विचार पवित्र हों।'' मेरे प्यारे! देखो माता अरून्धती कहती है ''धन्य है, प्रभु!'' ज्ञान और विज्ञान की विचारधारा मानो दोनों की प्रवाह से गति करती रहती थी। ब्रह्मचारी अपने आश्रम से मानो अन्धकार में रात्रि के काल में उनके विचारों को श्रवण करते रहते हैं।

पितर प्रवृत्ति से संसार-निमार्ण

अरे, माता-पिता तो वह महान बनते हैं जिनके विचारों को बाल्य शान्त हो करके, जिनके विचारों को उनकी वाणी को अनुसरण में लाने वाले हों। यदि गृह को ऊंचा बनाना है, समाज को ऊंचा बनाना है, मानवत्त्व को, गृह को गृहपथ्य नाम की अग्नि में चेताना है तो माता-पिताओं के इस प्रकार के विचार होने चाहिए। ज्ञान और विज्ञान की विचारधारा में माता और पिता, जब विचार देंगे तो गर्भ में रहने वाला बाल्य भी उनको श्रवण करेगा। जगत् में, गृह में रहने वाला बाल्य भी उनका अनुसरण करेगा। बेटा! यह केसे स्वर्ग नहीं बनेगा संसार ? विचार आता रहता है, परन्तु जब तमोगुण और देखो रजोगुण की विचारधारा बाल्यों के हृदयों में प्रवेश होती रहेगी तो देखो यह गृह नारकिक बनता रहेगा।

नक्षत्रों का प्रभाव

तो विचार आता रहता है, मैं कहा चला गया बेटा! माता अरून्धती और वशिष्ठमुनि महाराज के विचारों में जा रहा था। मुझे बेटा! वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल के, रात्रि के अन्तिम और प्रारम्भ के पहर में, दोनों ने ब्रह्म-चिन्तन ज्ञान और विज्ञान की उड़ानें उड़ते रहते थे मानो किस नक्षत्र का किस नक्षत्र से क्या-क्या समन्वय है? जैसे अरून्धती के निचले भाग में, बेटा! ध्रुवकेतु एक मण्डल कहलाता है। उस ध्रुवकेतु मण्डल का अरून्धती मण्डल से क्या सम्बन्ध है? अरून्धती मण्डल का देखो विचार, बाध कृत भागों में एक रोहिणीकेतु मण्डल का सम्बन्ध रहता है। उसका मानो वशिष्ठसे क्या सम्बन्ध है? वशिष्ठमण्डल और देखो स्वाति और ध्रुव मण्डल मेरे प्यारे! देखो, एक-दूसरे से समन्वय रहते है। एक हमारे यहां कृति भानुमण्डल कहलाता है, जिस मण्डल का सम्बन्ध देखो अरून्धती से और देखो वशिष्ठसे होता हुआ और जब माता के गर्भ में आठवां माह होता है, इन नक्षत्रों का

देखो वह ब्रह्मरन्ध्र से समन्वय होता है और उसकी तरंगें बाल्य के ब्रह्मरन्ध से उसका समन्वय हो करके, मेरे प्यारे! वह बाल्य उनसे तरंगित होता है। तो मुनिवरो! केसे प्रभु ने एक-दूसरे से यह संसार को कटिबद्ध किया है। माता अरून्धती कहती है "प्रभु! यह केसा नृत्य है मेरे देव का!" मुनिवरो! देखो इस प्रकार की विचारधारा जब होती रहती है तो राजा सायंकाल को आए थे तो रात्रि समाप्त हो गई इन्हीं विचारों को श्रवण करते-करते, प्रातःकाल होते ही राजा ने ऋषि के चरणों में मस्तिष्क वन्दना की। उन्होंने कहा, "राजन्! तुम किस काल में आए?" राजा ने कहा, "मैं आपके संग में सायंकाल को आ गया था, रात्रि समय आपके विचारों में मन मग्न हो गया, और मन मग्न हो करके मानो मुझे यह प्रतीत नहीं हुआ कि रात्रि किस काल में चली गई।

माता कौशल्या द्वारा राष्ट्र अन्न का त्याग

मेरे प्यारे! तो उन्होंने कहा, "राजन्! बोलो क्या उद्गीत गाना है?" उन्होंने कहा, "हे प्रभु! देखो देवी कौशल्या, राष्ट्र का अन्न ग्रहण नहीं कर रही है, वह कला-कौशल करके अन्न को पान कर रही हैं। "माता अरून्धती बोली, तो राजन्! तुम क्या चाहते हो?" उन्होंने कहा, "मैं राष्ट्र के अन्न को चाहता हू।?" "भगवन्! आप हमारे पूज्य हैं और राष्ट्र के संचालक हैं, हे प्रभु! आप हमें कोई शिक्षा दीजिए। आपकी आज्ञा का अवश्य पालन करेंगी।" मेरे पुत्रो! देखो यह वाक्य उन दोनों ने स्वीकार तो कर लिया परन्तु वशिष्ठकहते हैं, "वह ब्रह्मवेत्ता थे। क्या हे देवी! हमारा वहां जाना, वहां हमारा आगमन होना ही निरर्थक रहेगा। वह हमारे वाक्य स्वीकार नहीं करेगी। हम निरुत्तर हो जायेंगे। वह ऐसी बुद्धिमत्ता है, मानो उनका जो याग है, वह ऐसे महान वेद के मर्म को जानने वाले ऋषि ने किया है कि उसकी शिक्षा इतनी अकाट्य है कि हमें निरुत्तर कर देंगी।" उन्होंने कहा, "भगवन्! जब राजा की ऐसी आज्ञा है, तो गमन करना ही चाहिए।"

मेरे पुत्रो! देखो वह अपनी क्रियाओं से निवृत्त हो करके और राजा ने भी कुछ जल-पान इत्यादि पान करने के पश्चात् बेटा! वहां से गमन किया और भ्रमण करते हुए मुनिवरो! अयोध्या में आये और अयोध्या में उस कक्ष में पहु।चे, जहां माता कौशल्या, मानो देखो प्रभु का चिन्तन करती रहती, मनन करती रहती वह प्रत्येक माह में अपनी औषधियों का उसी प्रकार पान करती रही थी। मेरे प्यारे! जब उनके द्वार पर पहुंचे तो माता कौशल्य ने तीन आसन दिये। वे आसनों पर विद्यमान हो गये। मेरे प्यारे! देखो माता कौशल्या ने कहा, "कहो, भगवन्! मेरे सुयोग्य कोई कार्य हो? आप का आना, कोई न कोई कार्य तो है। मानो बिना सूचना के, बिना कारण आपका आना देखो, इस स्थली पर कोई न कोई इसमें गम्भीर रहस्य तो है।" मेरे पुत्रो! देखो, राजा ने कहा, "देवी! मैंने यह कहा था आपसे कि आप राष्ट्र के अन्न को ग्रहण करने लगो।" उन्होंने कहा, "मैंने आपको उत्तर दिया है, कि मैं इतनी सामर्थ्यत्व हूं क्या मैं स्वतः कला-कौशल करके अपने उदर की पूर्ति कर लेती हूँ।" मेरे प्यारे! देखो 'सम्भव ब्रह्मे', राजा तो यह वाक्य उच्चारण करके मौन हो गये। परन्तु देखो महर्षि वशिष्ठमुनि बोले, "हे देवी! तुम्हें यह प्रतीत है कि देखो जैसा भी मानो जिस स्थली पर परिणत हो जाता है, उसका वैसा ही आहार, वैसा ही व्यवहार, वैसा ही नृत्य करना चाहिए।" उन्होंने कहा, "प्रियतम।" तो वशिष्ठबोले, "हे दिव्यं ब्रहेः मेरे विचार में यह है कि तुम राष्ट्र गृह में पनपी हो, राष्ट्र-गृह में तुम्हारा मानो जन्म हुआ है, राष्ट्र-गृह में तुम पनप रही हो, राष्ट्र-गृह में देखो, तुम्हें सन्तान को जन्म देना है, तुम्हारा यह कर्त्तव्य है कि तुम स्वतः उस अन्न को ग्रहण करो जिस अन्न को ग्रहण करने से मानो देखो 'ब्रह्म बल' राजा प्रसन्न हो, राष्ट्र की प्रजा प्रसन्न हो।"

राष्ट्र की ऊर्ध्व गति

मेरे प्यारे! देखो ऋषि ने जब यह वाक्य कहा, तो देवी ने कहा, "हे प्रभु! आपके चरणों की वन्दना कर रही

हूँ। सबसे प्रथम तो आपके उपदेश के लिए मैं आपको धन्यवाद देती हूँ। क्योंकि आप मुझे एक मार्मिक उपदेश दे रहे हैं। परन्तु मैं यह उच्चारण कर ही हू। प्रभु! मेरे वाक्यों को आप श्रवण करते रहिएगा। मानो सबसे प्रथम तो यह कि आपने यह कहा है कि राष्ट्र-गृह में तुम्हारा जन्म हुआ है, राष्ट्र-गृह में जन्म लेने वाला राष्ट्र को त्याग करके तपस्या और विवेक में लग जाता है तो राष्ट्र ऊर्ध्वागति की उड़ान उड़ने लगता है। सबसे प्रथम तो यह रहा, परन्तु मैं अपने गर्भ से एक बालक को जन्म देना चाहती हू। तो मेरे मन की यह इच्छा है कि मेरा बाल्य त्याग और तपस्या में, रहे। देखो चाहे राष्ट्र में रहे, चाहे वह मानो पुष्पों पर रहे, चाहे वह मानो देखो 'धरा कृतम् वनों में रहे, उसकी प्रवृत्ति मानो एक सी ही बनी रहे। ऐसी मेरी प्रबल इच्छा है। भगवन्! उसके पश्चात् में यह चाहती हूं। कि कला-कौशल करके मैं पुरुषार्थ करती हूँ। जो पुरुषार्थ का अन्न होता है, वह अन्न ही मानव के लिए सार्थक होता है। वही अन्न मानो देखो समाज को और वहीं अन्न गृह को और मानव के शरीर को महान बनाता है। जिस अन्न में देखो, महानता होती है, पुरुषार्थ की तरगें होती है, वही अन्न मानो वही अन्नाद प्रभु की साध्ना में परिणत करा देता है।'' मेरे प्यारे! देखो जब देवी ने यह उत्तर दिया, उन्होंने कहा कि तीसरा यह वाक्य कि जहां जैसा जन्म लेता है, उसको वैसा ही विचार बनाने चाहिए। विचार मेरे मानो देखो राष्ट्रीय भी है, देवत्व भी हैं और यदि राष्ट्र में देवतापन नहीं रहेगा तो वह राजा नहीं कहलाता और जो राजा मानो देखो दैत्य ही दैत्य बना रहता है, रजोगुणी-तमोगुणी प्रवृत्ति बनाता रहता है, वह राष्ट्र नहीं कहलाता। मानो देखो, राष्ट्र वह होता है, जो प्रत्येक प्राणी पर अपनी दया करने वाला हो और देखो वह दया करता करता है। कहां तक चला जाये, क्या अपनी इन्द्रियों पर दया करता हुआ अपनी इन्द्रियों को संयमी बना करके, वह राष्ट्र का पालन करता है तो राजा संसार में महान् कहलाता है। मानो देखो मेरे में कोई सून्मता हो तो वर्णन कीजिए, प्रभु!''

संकल्पोमयी प्राणायाम का प्रभाव

मेरे प्यारे! महर्षि वशिष्ठमुनि महाराज ने कहा, ''बोलो अरून्धती! तुम्हें कुछ कहना है, उच्चारण करना है?'' माता अरून्धती बोली, ''हे देवी! हे पुत्री! हमारी यह कामना है, हम उस कामना को ले करके आये हैं कि तुम स्वयं पुरुषार्थ न करो, मानो तुम राष्ट्र के अन्न को ग्रहण करो और राष्ट्र के उस अन्न को लो जिस अन्न में रजोगुण और तमोगुण न हो। सतोगुणी अन्न को ग्रहण करो और तुम अपने विचारों से उसे तपोमय बना लो।'' मेरे प्यारे! देखो माता अरून्धती ने जब यह कहा तो देखो, कौशल्या जी ने कहा, ''हे माता! तुम्हारे चरणों में मेरी सदैव वन्दना रही है। और मैं आपसे औषध-विज्ञान के सम्बन्ध में नाना प्रकार का प्रश्न करती रही हू।, और आपने मुझे पनपाने के लिए बहुत से विचार दिये है और मेरे जीवन को ऊ।चा बनाना ही आपका कर्त्तव्य है। आपसे मानो कृतज्ञ रही हू। आपकी आज्ञाओं का पालन करती रही हूँ। परन्तु देखो यह जो तुम विचार दे रही हो, यह तुम्हारे अन्तर्हृदय के विचार नहीं हैं यह तुम्हारे अन्तर्हृदय के विचार होते तो मैं यह स्वीकार कर लेती। मानो तुम्हारे ये विचार कहीं से मानो देखो अहृदय के विचार है। माता! सबसे प्रथम तो मैं तुम्हारे इन विचारों को स्वीकार नहीं करूंगी। ।

मानो द्वितीय, यदि मैं तुम्हारे इन विचारों को स्वीकार भी करूं तो मानो देखो वह सतोगुण-रजोगुणी अन्न की तुम्हें कोई मानो नृतिका नहीं प्रतीत होगी। मुझे तो केवल ऐसा दृष्टिपात आता है, ऐसा भान होता है, क्या इन विचारों में कोई महानता नहीं है। परन्तु देखो यह तो संकल्प है और वह संकल्प मानव तल पर जब ऊंचा बनता है तो मानो देखो, संकल्पोमयी प्राणायाम होता है, वह संकल्पों से प्राणायाम करता है, उसमें नृत्य करने लगता है, वह संकल्प से ही मानो माता सन्तान को जन्म देती है और संकल्प ही माता का पुत्र-पुत्री होता है। आत्मा किसी

का न पुत्र होता है, न पुत्री होता है। यह संकल्प मात्र से ही पुत्र-पुत्री बना रहता है। उस संकल्प को यदि यह संसार 'मंगलम् ब्रहे', जैसे परमात्मा का यह अनुपम जगत् है, यह संकल्प मात्र है, प्रभु का संकल्प है, यह जो जगत् है, केवल यह प्रभु ने रचा है। केवल संकल्प मात्र से इसकी आयु है, अवधि है, अहोरात्र है। इसमें सूर्य उदय होता है, सूर्य अस्त हो जाता है, चन्द्रमा प्रकाश देता है। यह प्रभु का संकल्प मात्र जगत चल रहा है। यदि प्रभु का संकल्प, कहीं नष्ट हो जाये तो समाज अस्त-व्यस्त बन जायेगा। यह संसार ही अस्त-व्यस्त हो जायेगा। अन्धकार, अन्धकार नहीं रहेगाँ प्रकाश, प्रकाश नहीं रहेगाँ सूर्य, सूर्य नहीं रहेगा, तो हे माता! मैं यदि अपने संकल्प को नष्ट कर दूंगी तो मेरा तो जीवन नष्ट हो जायेगा। तो माता मैं अपने संकल्प को नष्ट नहीं कर सकती। हां एक प्रकार से नष्ट कर सकती हू।, मानो देखो जिस समय हे माता अरून्धती! तुम्हारा और ऋषिवर का मेरे पूज्य महादेवताओं का जब दोनों का संस्कार हुआ था, वह केवल दोनों का संकल्प था, कि 'एक-दूसरे के हो करके, हम संसार को मानो, भोगतव्य में ला करके यहां अपने जीवन में सुगन्धि देंगे और वह सुगन्धि ही हमें प्राप्त होगी। हम स्वयं सुगन्धित हो करके, प्रभु को प्राप्त हो जायेंगे', मानो, हे माता! यदि तुम दोनों का संकल्प नष्ट हो जाये, दोनों अपने संकल्प को नष्ट कर लो तो मैं भी अपने संकल्प को नष्ट कर सकती हूँ।''

मेरे प्यारे! देखो, माता जब अरून्धती ने यह वाक्य श्रवण किया, तो मुनिवरो! देखो मन ही मन में नतमस्तक हो गई और यह कहा ''कि यह दिव्या तो मानो देखो एक 'बुद्धि व्रण ब्रहे', यह तो प्रकाशमयी जीवन कहलाता है।'' मेरे प्यारे! देखो माता अरून्धती और वशिष्ठमुनि महाराज और राजा, तीनों वहां से अपने मन ही मन में प्रणाम करके, मेरे प्यारे! उन्होंने कहा ''धन्य है, देवी!'' वशिष्ठने कहा, ''धन्य है तुम्हें! तुम्हारा जीवन सदैव सार्थक बने और तुम्हारा मानवीय जीवन ऊर्ध्वा को प्राप्त होता रहे।'' ऐसा मानो शुभ कामना प्रगट करते हुए इन तीनों ने वहां से प्रस्थान किया।

यौगिक और मानवीय शिक्षा

मेरे प्यारे! देखो विचार आज क्या कह रहा है? विचार देते-देते बेटा! कहा चले गये, देना तो कुछ और विचार था, परन्तु कुछ दूरी चले गये। माता कौशल्या की छत्र-छाया की चर्चाएं प्रगट करते-करते बेटा! बहुत दूरी चले गये। विचार यह देना चाहते थे कि संसार में ऋषि-मुनि अतिथि बन करके यजमान को, दम्पतियों को केसे यौगिक और मानवीय शिक्षा का प्रसार करते रहे हैं। परन्तु दूरी चले गये। विचार यह चल रहा है कि बेटा! यह मानव-जीवन अपने में महान् और पवित्र बनना चाहिये। आओ, मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चा न देता हुआ, आज का विचार यह क्या चल रहा है? आज मैं बेटा! मानो देखो, ऐसे राष्ट्र, समाज के मर्म में चला गया, जहां बेटा! देखो कोई एक मार्ग, एक सुमार्ग ही हमें दृष्टिपात् आने लगा। आओ, मेरे प्यारे! वह माता-पिता देवता कहलाते है। वह माता देवता है। वह पितर देवता है, जो मानो अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करता है और जो कर्त्तव्य का पालन नहीं कर रहा है मानो देखो वह उद्दण्डता में परिणत है, वह देवत्त्व को प्राप्त नहीं हुआ करता है।

आओ, मेरे प्यारे! आज मैं देवताओं के ऊपर एक-एक देवता के ऊपर चर्चा करूंगा तो बेटा! समय की आवश्यकता रहती है। विचार वेफवल यह कि मेरे प्यारे! देखो माता-पिता सबसे प्रथम देवता हैं। यदि माता यह चाहती है मेरे आगे जब तक मेरा जीवन है, मेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाले बालक का निधन नहीं होना चाहिए, तो होगा ही नहीं। मानो देखो दोनों संकल्पवादी पति-पत्नी हैं। माता और पिता, देखो दोनों का संकल्प एक बन गया है तपस्या के आधार पर। कि हमारा एक-दूसरे से निधन होना नहीं है, तो होगा नहीं। एक-दूसरे का विच्छेद न होगा। परन्तु देखो यह केसी विचित्र उनकी संकल्प-विचाराधारा है, जब ज्ञान, वेद के मर्म और क्रियाकलापों के ऊपर

विचार-विनिमय रहेगा, तो मानो समाज ऊंचा बनेगा, मानो समाज एक महानता और सतोयुग की प्रतिभा में रत होता रहेगा। यह है, बेटा! आज का वाक्य।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह कि मुनिवरो! देखो, हमें देवत्व को प्राप्त होना चाहिए। हे यजमान! जब तू अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके अपनी दिव्या से कहता है 'हे दिव्या! आओ आज हम अपने कर्मकाण्ड में अपने प्रभु के और देवताओं के चिन्तन में लग जाएं। और मानो देखो बा"य जगत् को सजातीय बनाना है, आन्तरिक जगत को सजातीय बनाना है।'' मेरे प्यारे! देखो दोनों जगत् जब मानव के सजातीय हो जाते है तो मानव 'मानव' बन जाता है, राष्ट्रवाद अपनी स्थली पर मानव अपनी स्थली पर मानो अपनी-अपनी स्थलियों पर महानता को प्राप्त होता रहा है। यह है, बेटा! आज का वाक्य। अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल ही प्रकट करेंगे। आज का वाक्य अब यह समाप्त होने जा रहा है। समय मिलेगा, शेष चर्चाएं, कल प्रगट करेंगे। अब वेदों का पठन-पाठन। वभीलपुर, हापुड़।

९ विविध देव-पूजा 23 03 1988

जीते रहो! देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद-वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा अनन्तमयी माने गये हैं और जितना भी यह जड़-जगत् अथवा चैतन्य-जगत् हमें दृष्टिपात् आ रहा है, उस सर्वत्र ब्रह्मांड के मूल में प्रायः वह परमपिता परमात्मा दृष्टिपात् आता रहा है।

जड़-चेतन जगत्

क्योंकि मानव ने जब जड़ और चेतना को जानने का प्रयास किया और यह विचारा कि यह जड़वत् क्या है और चैतन्यवत् क्या है ? तो नाना प्रकार का अनुसन्धान करने के पश्चात् ऋषि-मुनियों ने एक-एक शब्द को ले करके उसके ऊपर ऊंची-ऊंची उड़ानें उड़ीं और अपना यह मन्तव्य दिया, अपना निर्णय दिया कि वह परमपिता परमात्मा जड़ और चैतन्य, दोनों में विद्यमान है। क्योंकि कोई स्थान, कोई स्थली ऐसी नहीं है जहां वह परमपिता परमात्मा न हो, वह जड़ और चैतन्य दोनों में ही दृष्टिपात आता रहा है। जहाँ ज्ञान और प्रयत्न है, मानो वह ज्ञान की वह गति अप्रतिम् वह चेतना की संज्ञा प्रदान की है, परन्तु जहाँ ज्ञान और प्रयत्न से शून्य है, वहां चाहे गति भी हो परन्तु वह जड़वत् कहलाती है। चेतना का एक ही स्वरूप माना गया है कि जहां ज्ञान हो और प्रयत्न हो और 'जडं, ब्रह्मः', मानो देखो यह सर्वत्र गति भी वहां विद्यमान रहती हो। परन्तु आज का हमारा वेद-मन्त्र इस जड़ और चैतन्य के ऊपर ही अपने विचार व्यक्त करता रहा है। और वेद-मन्त्र अपने में ध्वनित होता रहा है तो इसीलिए हमारे वैदिक साहित्य में, वैदिक मन्त्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार की उड़ानें उड़ी जाती हैं।

परन्तु आज का हमारा वेद-मन्त्र जहां परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है, वहां आगे वही वेद-मन्त्र मानो यजमान के समीप जाने का प्रयास करते रहते हैं। हमारे यहां, यजमान की विवेचना करते हुए आचार्यों ने बड़ी विचित्र उड़ानें उड़ी हैं और वैदिक साहित्य में उसका बड़ा महत्त्वपूर्ण वर्णन आया है। यजमान वास्तव में तो परमपिता परमात्मा को कहा जाता है परन्तु यहां, यजमान, हमारे यहां उसे भी कहा जाता है जो यज्ञ का अधिपति कहलाता है। अथवा 'यज्ञं भवितां ब्रह्मणां लोकः', यजमान कहता है अपनी दिव्या से, ''हे दिव्या! आओ, हम देव-पूजा करने को तत्पर हो जायें, अग्नि का चयन करें।'' क्योंकि अग्नि हमारे यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की मानी गई है। एक अग्नि वह कहलाती है, जो यज्ञशाला में प्रदीप्त हो रही है जो नाना प्रकार के साकल्य को अथवा चरू को सूक्ष्म रूप बना देती है और वह मानो वायुमण्डल में छा जाती है और वायु-मण्डल में विजातीय पदार्थों का, विजातीय परमाणु को नष्ट करना और सजातीय को सजा ;सुन्दरद्ध देने का नाम याग और उसकी सुगन्धि् और पदार्थ अग्नि के स्वरूप में रत होता रहा है। तो मेरे प्यारे! वह चरू का विभाजन कर देती है, वही वृष्टि के मूल में विद्यमान रहती है।

वृष्टि याग

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जब महाराजा अश्वपति के यहां भिन्न-भिन्न प्रकार के याग, उसमें वृष्टि याग भी होता रहता था। मानो देखो, वृष्टि याग का अभिप्रायः यह था कि प्रजा और राजा दोनों सम्मिलित हो करके और नाना प्रकार के चरू को एकत्रित करके अग्न्याधान करते हैं। जब अग्नि का चयन होता है, मानो देखो यजमान अपनी देवी से कहता है ''हे दिव्या! आओ, देखो हम वायु-मण्डल में अपने चित्रों को प्रसारण करना चाहते

हैं।'' मानो जहां हमारे पूर्वज चित्र बन करके चित्रावली-वृत्तियों में रत हो गये हैं, हम भी उनमें रत होना चाहते हैं, जिससे हे देवी! वेद-मन्त्र, साकल्य और हमारी वाणी मानो देखो वह दोनों, देखो 'शब्द ब्रह्मे वाचसं व्रतं प्रह्वा गतं ब्रहे,' वेद के वाक्यों में यह कहा गया है कि अग्नि-धराओं पर वेद-मन्त्र भी हैं वेद-मन्त्र का मानो वृत्त रूप भी है और यजमान का चित्र और आकार बन करके, मेरे पुत्रो! देखो, द्यौ-मण्डल में प्रसारण करना चाहते हैं।'' यजमान कहता है, ''हे दिव्या! हमारे चित्र, मानो देखो वह द्यौ में प्रवेश हो जायेंगे तो मानो वही किरणों, वहीं रश्मियों में ओत-प्रोत हो करके मानो वह हमें ही प्राप्त होते रहेंगे, समय-समय पर होते रहते है।

महर्षि विश्वश्रवा का चित्त-दर्शन

मेरे प्यारे! देखो, मुझे वह काल स्मरण आ रहा है, एक समय बेटा! देखो विश्वश्रवा उर्िलक अपने आसन पर विद्यमान थे। तो विश्वश्रवा के मस्तिष्क में यह वाक् थे कि 'सोढां ब्रह्मे' कि 'मैं जन्म-जन्मान्तरों से मानो देखो ऋषि की उपाधि को प्राप्त होता रहा हू। अब मैं इसे केसे जानू।।' परन्तु देखो एक समय चित्त-मण्डल के ऊपर अनुसन्धान करने के लिए बारह वर्ष का उन्होंने अनुषन किया और बारह वर्ष का अनुषन करने के पश्चात् वह मानो देखो याग करते हुए उस वायु मण्डल का शोधन करना और उन विचारों को उसमें समावेश करना और मनस्त्व-प्राण के ऊपर अध्ययन करना। तो मेरे प्यारे! उनके चित्त-मण्डल में उनके जो जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार थे मानो वो संस्कार उद्बुद्ध हो करके, मेरे पुत्रो! देखो रात्रि के अन्तिम पहर में वे चित्र उनके समीप आते रहे। तो मानो देखो विश्वश्रवा अपने मन ही मन में, बेटा! वह विचारने लगे, ''यह क्या हो रहा है?'' उनके निकटतम महर्षि भिण्डी महाराज का एक आश्रम था महर्षि भिण्डी मुनि से प्रातःकालीन् बोले कि ''प्रभु! ऐसा हो रहा है।'' उन्होंने कहा, ''वे चित्र, मानो तुम्हारे वेद-मन्त्रों पर स्थित हो करके अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके और वह चरू के साथ अन्तरिक्ष में द्यौ में प्रवेश हो रहे हैं। वे द्यौ-मण्डल के तुम्हारे चित्र अन्तःकरण में, वही दृष्टिपात् आ रहे हैं। उनके चित्र बन करके वह तुम्हारे चित्त में चित्रित हो करके उनको तुम साक्षात्कार दृष्टिपात् कर रहे हो।''

मेरे प्यारे! अध्ययन करने वालों ने देखो, मानो बड़ा अध्ययन किया है इस सम्बन्ध में। आज मैं इस विचार में न जाता हुआ केवल क्या यजमान कहता है, ''हे दिव्यासे! आओ, अब हम मानो अपने चरू को अपने में प्रवेश करना चाहते हैं, चरू के साथ वेद-मन्त्र का उद्गीत गाना चाहते हैं और वही उद्गीत मानो देखो चित्र, हमारा शब्द के रूप में द्यौ में प्रवेश करना चाहते हैं जिससे वह हमारे ही शब्द हमें प्राप्त होते रहें। तो मेरे प्यारे! देखो यह विज्ञान बड़ा अनूठा है बड़ा अनुपम है।

मेरे प्यारे! देखो, हमारे यहां, परम्परागतों से ही दोनों प्रकार की विज्ञान-धाराएं, मानवीय मस्तिष्कों में सदैव रत रही हैं। मेरे पुत्रो! देखो 'राजनं प्रह्वा दीन ब्रहे' ये दो आवृत्तिया। कहलाती हैं, आध्यात्मिक और भौतिकवाद। मानो देखो याग भी आध्यात्मिकवाद में और भौतिकवाद में परिणत होता रहा है। तो आओ, मेरे प्यारे! विचार यह दे रहे थे, कि महाराजा अश्वपति के यहां, मानो जब वृष्टि याग होते थे, तो बेटा! देखो उस वृष्टि-याग में नाना बुद्धिमान एक पंक्ति लगाए हुए विद्यमान रहते थे और मुनिवरो! देखो वे नाना प्रकार के याग करते हुए राजा अपने चरू को, अपने चित्र और वेद-मन्त्रों के साथ द्यौ-मण्डल में प्रवेश कराते रहे। तो मेरे प्यारे! उनका अन्तरात्मा पवित्र होता हुआ व्यापकवाद में परिणत होता हुआ, विज्ञानवाद की प्रतिभा में रत होता हुआ, मानवीयत्व की प्रतिभा में रत हुआ।

संकल्प और देवपूजा

मेरे प्यारे! मैं आज विशेषता में न जाता हुआ, आज का हमारा विचार यह क्या कह रहा है? बेटा! मैं आज

कोई तुम्हें विशेष चर्चा देने नहीं आया हू।, मैं कोई व्याख्याता भी नहीं हू।, केवल तुम्हें परिचय देने के लिए आता हू। और वह परिचय क्या है कि आज हम अपने मौलिक विज्ञान और मौलिक क्रियाओं को जान करके अपने में संकल्पवादी बन जायें। मेरे प्यारे! देखो इससे पूर्व काल में हम, बेटा! संकल्प की चर्चा कर रहे थे, मानो संकल्प अपने में कितना अनूठा रहता है कि संकल्प को नष्ट नहीं किया जा सकता। इसलिए यजमान अपनी यज्ञशाला में एक संकल्प करता है। और संकल्प करके कहता है, ''मैं याग और देव-पूजा करने के लिए तत्पर हूँ।'' मानो यह संकल्प करता है और देवत्त्व को प्राप्त होना चाहता है। तो मेरे प्यारे! देखो, मुझे स्मरण है, एक समय, महाराजा अश्वपति के यहां याग हुआ, और जब वह याग हुआ उस याग का नाम था, अग्निष्टोम याग। अग्निष्टोम याग में, जब उन्होंने संकल्प लिया तो मानो देखो उनकी पत्नी और वे दोनों रात्रि के काल में एकान्त स्थली पर विद्यमान हो गये और विचारने लगे। राजा ने कहा, ''हे दिव्या! यह संकल्प जो हमने किया है, यह क्या है?'' मेरे पुत्रो! उनकी देवी ने कहा, उनकी देवी का नाम था रेणुका, वह रेणुका बोली कि ''प्रभु! मेरे विचार में तो यह आता है कि यह जो संकल्प है, यही संसार को मानो कटिबद्ध करने वाला हैं यह संकल्प एक-दूसरे से मिलान करना जानता है।

संकल्पमयी जगत्

मेरे पुत्रो! देखो यह विचार होता रहां उन्होंने प्रश्न किया ''देवी! क्या तुम संकल्प को स्वीकार करती हो?'' उन्होंने कहा, ''भगवन्! कौन नहीं करता? हमारा, आपका मानो देखो संकल्प हुआ, संकल्प मात्र से एक-दूसरा जीवन, जीवन में प्रतिष्ठि हो गया। मानो देखो जैसे परमपिता परमात्मा ने जब सष्टि का सृजन किया तो सष्टि के सृजन में वह एक ही संकल्प था प्रभु का, देखो प्रकृति का और चेतना का मिलान और सष्टि की रचना हो गई। मानो देखो इसमें पंच महाभूतों का सहयोग, पंच, महाभूतों की कृतिया। उत्पन्न हो गईं। वे भी एक-दूसरे के संकल्प से कटिबद्ध हो गईं। तो प्रभु! यह जो नाना प्रकार का मंडलवाद है, यह जो नाना प्रकार का लोक-लोकान्तरवाद है, यह केवल प्रभु का संकल्प ही तो है रेणुका बोली कि ''प्रभु! यह सर्वत्र संकल्प है, मानो देखो 'अमृतं ब्रहे', एक-दूसरे में गुथा हुआ जगत् है, एक-दूसरे में लोक-लोकान्तर भी गुथे हुए है तो यह संकल्प मात्र है।''

मेरे प्यारे! देखो, जब योगीजन अपने में यह संकल्प करता है कि मुझे प्रभु से मिलन करके आत्मवान् बनना है और आत्मवान् तब तक नहीं बनता जब तक प्रभु की सष्टि को नहीं जान लेता, जब तक सष्टि के विधन को नहीं जान लेता, तब तक वह आत्मवान् नहीं बनता। तब तक वह संकल्प करता है। मन से कहता है, ''हे मनस्त्व! तू संकल्पवादी है। तू संकल्प कर। अपने प्रभु को जान करके तुझे आत्मवान् बनना है।'' मेरे प्यारे! देखो मनस्त्व से संकल्पवादी बनता है। तो हे प्रभु! मेरे विचार में तो यह आता है कि यह सर्वत्र जगत् एक संकल्प मात्र है। क्योंकि राष्ट्र और प्रजा दोनों एक संकल्प में ही तो कटिबद्ध रहते हैं। मानो देखो वह संकल्प कहलाता है। राजा अपनी प्रजा के लिये संकल्प करता है, प्रजा राजा के लिये संकल्प करता है, प्रजा राजा के लिये संकल्प करती है, पत्नी पति के लिए संकल्प करती है और पति पत्नी के लिए संकल्प करता है मानो देखो जब संकल्प एक-दूसरे में कटिबद्ध हो जाते हैं। माता-पिता एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके संकल्प करते हैं कि हम पुत्रवान् बनना चाहते हैं। तो मेरे पुत्रो! देखो वह संकल्प है। अन्यथा आत्मा पुत्र या पुत्रियाँ किसी की नहीं होती केवल संकल्प मात्र से पुत्र है, संकल्प मात्र से ही पुत्रियाँ कहलाती हैं। मानो देखो इसी प्रकार पौत्र भी एक संकल्प मात्र कहलाता है।

बेटा! यह जो सर्वत्र जगत् है, रेणुका यह कहती थी कि ''प्रभु! वह सर्वत्र जगत् ही एक संकल्प मात्र है।'' मानो देखो गुरु के चरणों में शिष्य विद्यमान रहता है और वह कहता है, ''मैं धनुर्याग करना चाहता हूँ। दैनिक याग

तो मैं मानो अग्नि-वृत्तियों में करता ही रहता हूँ। परन्तु मैं आज धनुर्याग करने के लिए जा रहा हूँ।'' तो ब्रह्मचारी आचार्य के चरणों में संकल्प मात्र से ही विद्यमान होते हैं और यह कहते हैं कि ''मानो देखो यह 'संकल्पं ब्रहे', हे प्रभु! आचार्य तो संकल्प मात्र होता है, परन्तु ज्ञान तो मानव के मस्तिष्क और प्रवृत्तियों में और आत्मवृत्तियों में रत रहता है, प्रभु! केवल आचार्य उसे संकल्प करके उसे जागरूक करता है और जागरूक करता हुआ चरणों में विद्यमान हो करके नतमस्तक हो करके धनुर्याग करता है।

धनुर्याग में, बेटा! मैंने बहुत से धनुर्यागों को दृष्टिपात् किया। बेटा! मुझे वह काल स्मरण रहता है, जब राजा सगर के यहां भी धनुर्याग होता रहां मानो देखो धर्नुयागियों ने राजा सगर की तीस हजार सेना नष्ट कर दी थी। बेटा! कौन? महर्षि कपिल मुनि के आश्रम में जय और विजय दोनों ब्रह्मचारी थे। जय और विजय ब्रह्मचारियों ने देखो धनुर्याग के अप्रतिम् से ही सेना नष्ट कर दी थी, केवल ऋषि का अपमान मात्र से। तो विचार आता रहता है, बेटा! ध्रुर्याग का अभिप्रायः क्या है? मुनिवरो! देखो, अस्त्रों-शस्त्रों की विद्या का पान करना, अस्त्रों-शस्त्रों से, उन क्रियाओं में रत रह करके मानो देखो अपने याग को सम्पन्न करना है। तो बेटा! आज मैं धनुर्याग में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ।

दाम्पत्य देवपूजा

विचार केवल यह है कि, मुनिवरो! देखो 'यज्ञं ब्रह्मः' जब उन्होंने अग्निष्टोम याग का संकल्प किया तो उन्होंने कहा, ''हे देवी! यह तो मैंने तुम्हारे वाक् को स्वीकार कर लिया कि यह प्रभु का जो यज्ञ जगत् है यह भी संकल्प मात्र है। तो क्या देवी, तुम्हारा जीवन भी संकल्प मात्र ही है?'' उन्होंने कहा, ''प्रभु!, 'दिव्यं ब्रह्मः', मानो हमारा संकल्प तो होता ही है। मानो देखो पति-पत्नी का संकल्प मात्र से जीवन गतिवान होता है और मानो देखो हम संसार में पुत्रवान् बनने के लिए तत्पर होते हैँ वह भी संकल्प मात्र है।'' मेरे प्यारे! देखो उस संकल्प में महानता, पवित्रता, ज्ञान और विज्ञानता और देवत्त्व होना चाहिए।

वाजपेयी याग

मेरे प्यारे! देखो इसी विचार में प्रातःकाल हो गया। प्रातःकाल होते, बेटा! अपनी-अपनी यज्ञशाला में, क्रियाओं से निवृत्त हो करके यज्ञशाला में पहु।चे। तो मेरे प्यारे! देखो यज्ञशाला में महर्षि विभाण्डक मुनि विद्यमान् थे। महर्षि विभाण्डक मुनि के साथ, मानो देखो 'अमृतं ब्रह्मः वृत्तम्' मानो वैशम्पायन जो याग के ब्रह्मा थे। तो मेरे प्यारे! देखो उनसे यह प्रश्न किया यजमान ने कि ''प्रभु! यह वाजपेयी याग क्या होता है?'' उन्होंने कहा ''हे राजन्! वाजपेयी याग वह होता है, कि राजा के राष्ट्र में मानो देखो वह, देवत्त्व अपने विशुद्ध रूप से क्रियाकलाप करते रहें और उसके राष्ट्र में कोई दैविक प्रकोप न हो जाये। क्योंकि दैविक प्रकोप जब होते हैं तो मानो देखो प्रजा में त्राहि-त्राहि हो जाती है। अति-वृष्टि, हो जाये या अनावष्टि हो जाये, उसके मूल में सबमें त्राहि-त्राहि होती है। तो मानो देखो राजा इसलिए वाजपेयी याग करता है।'' वाजपेयी याग का अभिप्रायः यह है कि यह 'प्रथम ब्रहे तृत्वां जनं ब्रहे कृणः वाचं तत्वं ब्रही वृत्तः', मेरे प्यारे! वैशम्पायन ऋषि कहते है, कि ''हे राजन्! तो मेरे राष्ट्र में मानो देखो, प्रजा में महानता और संकल्पता होनी चाहिए, जिससे राजा के राष्ट्र में मानो देखो देवत्त्व की प्रवृत्ति विशेष रहे। और, देवत्व की प्रवृत्ति विशेष होने से, दैत्य प्रवृत्ति सूक्ष्म हो जाती है। तो देवपन ही राष्ट्र को स्थिर कर देता है। उसमें बुद्धिमत्ता और महानता की ज्योति जागरूक हो जाती है।''

अग्निष्टोम याग

मेरे प्यारे! देखो ऋषि के वाक्यों को पान करके राजा हर्ष मग्न हो गये। उन्होंने कहा, ''कि प्रभु! यह भी

हमने स्वीकार कर लिया। परन्तु हम यह जानना चाहते हैं प्रभु! यह अग्निष्टोम याग क्या होता है?'' उन्होंने कहा, ''अग्निष्टोम याग वह होता है, जो अग्नि को चेताना चाहता है। मानो देखो जिस यज्ञशाला में विद्यमान है, उस यज्ञशाला में प्रजा और राजा दोनों विद्यमान हैं और दोनों याग कर रहे हैं परन्तु देखो वह अग्निष्टोम याग करना चाहते हैं। अग्नि कहते हैं ज्ञान को, अग्नि कहते हैं महानता को, अग्नि कहते हैं वाणी को, अग्नि कहते हैं यह जो भौतिक अग्नि प्रदीप्त हो रही है। अग्नि कहते हैं, राजा के राष्ट्र में वैज्ञानिक को। परन्तु देखो अग्निष्टोम याग के अभिप्रायः तो बहुत कुछ हैं परन्तु रूप केवल यह कि अग्निष्टोम उसे कहते हैं जो अग्नि का नुषन करते हुए मानो देखो अग्नि के ऊपर अनुसन्धन करते हैं। अग्नि तत्त्व को जानते है। अग्नि में ही रत रहने वाले हैं। जैसे मानो देखो अग्नि के ऊपर विद्यमान हो करके, जैसे बेटा! हम इससे पूर्व काल में देखो महर्षि मार्कण्डेय की चर्चा कर रहे थे। महर्षि मार्कण्डेय जी एक-एक तथ्य को जान करके वह यानों का निर्माण करते रहे।

इसी प्रकार, हे राजन! तेरा भी यह कर्त्तव्य है, कि जब तू अग्निष्टोम याग करता है, एक स्थली पर वैज्ञानिक हों, एक स्थली पर ब्रह्मवेत्ता हों, एक स्थली पर कर्मकाण्डी हों और एक स्थली पर मानो देखो वह ब्रह्मा का बखान करने वाले वेद को जटा पाठ, घन पाठ में गाने वाले हों, 'स्मृत प्रह्वा', स्मृतियों के द्वारा तेरे राष्ट्र में बुद्धिजीवी प्राणी होने का नाम ही अग्निष्टोम याग कहा जाता है। देखो बुद्धिजीवी प्राणी होना राष्ट्र में यह राजा का उत्थान होना है और राजा के राष्ट्र में बुद्धिहीन प्राणी, स्वार्थपरता के प्राणी, राजा का स्वार्थपरता में आ जाना राष्ट्र को नारकिक जगत् में ले जाना है।''

कर्त्तव्यवादी की देवपूजा

तो मेरे प्यारे! देखो ऋषि ने बड़ी ऊर्ध्वा में यह वाक् प्रगट कराये। राजा ने स्वीकार किया। राजा ने कहा ''धन्य हो, प्रभु!'' परन्तु उन्होंने पुनः यह प्रश्न किया कि ''महाराज! राष्ट्र में केसे वैज्ञानिक होने चाहिए, आध्यात्मिवेत्ता या भौतिक विज्ञानवेत्ता ?'' उन्होंने कहा कि, ''राष्ट्र को यदि उत्थान में लाना है, उत्थानवादी बनाना है, तो राजा के राष्ट्र में दोनों प्रकार का विज्ञान होना चाहिए। भौतिकविज्ञान हो और उसमें आध्यात्मिकवाद की पुट लगी रहनी चाहिए। मानो सबसे प्रथम राजा के राष्ट्र में यह होना चाहिए कि अध्किर की पुकार करने वाला प्राणी समाज में न रहना चाहिए। यदि अध्किर को पुकारने वाला प्राणी राजा के राष्ट्र में होगा तो राजा के राष्ट्र में अग्नि प्रदीप्त हो सकती है। परन्तु राजा के राष्ट्र में देखो कर्त्तव्यवादी प्राणी विशेष होना चाहिए। क्योंकि जब राजा स्वतः कर्त्तव्यवादी होगा, वह प्रजा से मिलन करने वाला है, याग करने वाला और वह अपने को सुसज्जित और इन्द्रियों पर जय करने वाला होगा। कर्त्तव्यवादी राजा के राष्ट्र में प्रजा भी कर्त्तव्यवादी होती है। और, जब कर्त्तव्यवादी समाज होता है, वह कहता है, ''तुझे कर्त्तव्य करना है, अध्किर देना या न देना, वह तो प्रभु के ही मानो तत्परता में हम त्याग रहे हैं। जब इस प्रकार की मानो देखो प्रजा और राजा दोनों होते हैं, तो राजन! मानो देखो, राजा के राष्ट्र में सदैव सुविचार रहेगे सुसज्जित रहेगी और वैदिकवाद क्या मानो प्रकाशवाद रहेगा, अन्धकार-अज्ञान नष्टहोता रहेगा। परन्तु देखो 'ये' दोनों रहने चाहिये। राजा के राष्ट्र में कर्त्तव्यवाद होना चाहिए।

उभयपथी विज्ञान में देवपूजा

जब कर्त्तव्यवाद के गर्भ में विज्ञान रहता है और देखो, अध्किर की पुकार जब स्वीकार करने लगती है तो उसके गर्भ में अन्ध्कार रहता है। इसीलिए देखो, प्रकाश को, अग्रणीय बना करके और अन्ध्कार को नष्ट करके आध्यात्मिकवाद की भौतिकवाद में पुट लगी रहनी चाहिए, जिससे विज्ञान का दुरूपयोग न हो। और, विज्ञान का जिस भी काल में दुरूपयोग होता है, वह काल राजा और समाज के लिए मानो भयंकर होता है, वह रक्तमयी

होता है। यह वाक्, ऋषि कहता है "मैं नहीं कहता, सब ऋषि कहते हैं, इस वाक् को।"मानो देखो एक आध्यात्मिवादी प्राणी और एक भौतिक वैज्ञानिक दोनों एक स्थली पर विद्यमान हैं। परन्तु आध्यात्मिकवादी तो यह विचार रहा है, "कि मेरी मृत्यु नहीं होनी चाहिए।" परन्तु देखो वह जो एक स्थली पर विद्यमान है विज्ञानवेत्ता, वह विचार रहा है कि "किसी तरह मैं चन्द्रमा में चला जाऊं, मंगल में चला जाऊं, मानो मैं चित्रावलियों का निर्माण करता रहू। जिससे मेरा नामोकरण ऊंचा बना रहे, जिससे मेरी मानो प्रसन्नता हो।" वह वैज्ञानिक यह विचार रहा है। और, एक यह विचार है, "यदि तेरे में अभिमान आ गया तो तू आध्यात्मिकवाद से दूर हो जायेगा और मृत्यु को विजय नहीं कर सकता।"

मृत्यु का कारण

मानो देखो अभिमान से मृत्यु विजय नहीं हुआ करती है। मृत्यु विजय तब होती है, जब मृत्यु के मूल कारण को जान लिया जाता है। मानो देखो, मृत्यु का मूल कारण क्या है? मृत्यु का मूल कारण अभिमान है। मृत्यु का मूल कारण, मानो जिससे मृत्यु आती है, वह मानो देखो स्वार्थपरता हैं वह अभिमान है। वह मानो देखो, अपने जीवन का दुरूपयोग करना ही मृत्यु को लाना है। मेरे प्यारे! देखो वह एक मृत्युंजय भौतिक विज्ञान की देन हुआ करती हैं। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था, पुत्रो! कि राजा रावण के राष्ट्र में भी मानो देखो विज्ञान का दुरूपयोग हुआ था और उससे पूर्व काल में भी विज्ञान का दुरूपयोग हुआ मानो उसी दुरूपयोग के कारण देखो, राष्ट्र अग्नि के मुखारबिन्द में परिणत हो जाते हैं, समाज रक्तमयी हो जाता है।

आत्म लोक में देवपूजा

मैं, बेटा! कहां चला गया हू? दूर-चला गया विचार देते-देते। विचार यह प्रारम्भ हो रहा था कि यजमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके अपनी देवी से कहता है, "आओ, हम देव-पूजा करेंगे।" मानो देखो वह विज्ञान भी देव-पूजा है, मानो आध्यात्मिकवाद भी देव-पूजा है। जो देवताओं का, मानो आत्मा का जो लोक है, यह देव-लोक कहलाता है। आत्मा मानो देखो देवताओं के लोक में गमन करता है। यह शरीर हमारा आत्म-लोक कहलाता है। यदि 'ब्रह्मचर्यं ब्रह्मचित्रां तत्प्रहे लोकां वाचन्नमं ब्रहे कृणं ब्रहे कृतः देवत्या', मानो देखो ब्रह्मचारी देवता बनता है, वह देवत्त्व को प्राप्त होता रहता है।

अग्निष्टोमयागी राजा

मेरे पुत्रो! विचार क्या चल रहा था, कि यह जो जगत् है यह केवल संकल्प मात्र है। तो राजा जब यह संकल्प करता है "कि मेरे राष्ट्र में प्रजा मानो देखो आध्यात्मिकवेत्ता हो और मैं स्वतः आध्यात्मिकवेत्ता बनू।" तो, बेटा! जब वह संकल्प करता है तो राष्ट्र और प्रजा दोनों अग्निष्टोम यागी बन करके राष्ट्र को ऊंचा बनाते हैं, पवित्रता में परिणत हो जाते हैं। मेरे प्यारे! देखो, जब राजा असंकल्पवादी क्या, यह विचार लेता है कि मेरा राष्ट्र कहीं चला जाये, मुझे तो लोलुपता से ही प्रयोजन रहता है। तो उस राजा के राष्ट्र में मानो निर्वाचन प्रणाली भ्रष्ट हो जाती है। और, निर्वाचन प्रणाली के भ्रष्ट होने पर प्रजा में देखो अधिकार की पुकार होने लगती है, वह अधिकार चाहता है। मानो देखो अधिकार में आलस्य है, प्रमाद है और जब वहां अधिकार और आलस्य में प्रमाद है, वही प्रमाद, मेरे पुत्रो! देखो, राजा के राष्ट्र में रक्तभरी क्रांति का मूल कारण बनता चला जाता है। और राजा अग्नि के मुखारबिन्द में परिणत हो जाते है।

रावण की अनाधिकार चेष्टा

मुझे स्मरण आता रहता है, मैं वार्ता तो बहुत ऊर्ध्वा की प्रगट कर रहा था। विचार यह चल रहा था कि

राजा रावण के काल में भी अधिकार की पुकार हो गई थी। क्योंकि राजा ही अधिकार को चाहने लगा था। मैंने तुम्हें कई काल में वर्णन कराया था, पुत्रो! क्या राजा रावण को जब मानो अधिकार की पुकार, बलवती हुई तो मानो देखो जितने भी लंका के अंग-संग सूक्ष्म उससे छोटे अग्रता राष्ट्र थे, उन्होंने उसे अपनाने का प्रयास किया। समुद्र के तट पर, मेरे पुत्रो! देखो तुमने दृष्टिपात भी किया होगा, समुद्र के तट पर मानो देखो गरूड़ और उनके जो विधाता थे, मानो देखो वे दोनो 'अप्रतिम् ब्रह्मे', सम्पाति राजा को उन्होंने मानो देखो उनकी सर्वशः सेना, पुत्र नष्ट करके वह तो समुद्रों के तट पर कारागार में स्थिर कर दिये थे और सुवेतु मानो सुबाहु की कन्या को ले करके उसको वहां का अधिराज प्रदान किया, जिसको देखो 'कृतम्' जिसे सुरसा कहा जाता था। वह सुरसा मानो देखो राष्ट्रीयता की, एक महान् राजा रावण के राष्ट्र के विभाग की वह राष्ट्रीयता की मानो पालना में लगी हुई थी। तो विचार आता रहता है, कि इस प्रकार के देखो, राजा रावण के यहां जब नवीन विचार बलवती हो गया, अधिकार ही चाहने लगा, तो परिणाम क्या हुआ, बेटा! राष्ट्र अग्नि के मुखारबिन्द में चला गया। तो परिणाम यह होता है कि, हे मानव! वैदिक साहित्य यह कहता है, तू कर्त्तव्यवादी बन करके कर्त्तव्य का पालन कर क्योंकि कर्त्तव्य ही तेरे जीवन का साथी है, और वही जीवन को ऊर्ध्वा मैं गति करा देता है। मुनिवरो! देखो मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में बहुत सी वार्ताएं निर्णय दी हैं। आज मैं उन वाक्यों को निर्णय देने के लिए नहीं केवल विचार यह देने के लिए आया हू। कि प्रत्येक मानव अपनी जीवनचर्या के सम्बन्ध् में अपनी मानवीयता के लिए विचार-विनिमय करता रहे और वही विचार-विनिमय करता हुआ मानव अपने में मानवीयता के ऊपर गम्भीरता में विचार और आध्यात्मिकवाद और भौतिक विज्ञान दोनों एक सूत्र में सूत्रित हो जाएं, तो यह समाज मानो देखो कल्याणमयी बनता रहेगा। मेरे विचार में, मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी निर्णय कराते रहते हैं, निर्णय देते रहते हैं, आधुनिक काल की चर्चाएं, परन्तु यह अपना निर्णय दिया करते हैं कि जब तक विज्ञान का दुरूपयोग होता रहेगा, तब तक समाज में महानता का जन्म नहीं हो सकता।

विज्ञान का दुरूपयोग और ब्रह्मचर्य का नाश

देखो विज्ञान का दुरूपयोग होना, जहां मेरी पुत्रियों का, मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय वर्णन कराया कि मानो देखो जिस काल में विज्ञान की चित्रावलियों पर मेरी पुत्रियों का नृत्य होता रहेगा, जहां मेरी पुत्रियों का स्वागत होना था, जहां मेरी पुत्रियों का चरण चुम्बन करने के लिए तत्पर रहे हैं ऋषि-मुनि भी परम्परागतो से, परन्तु जहां उनके अश्लील चित्रों का दर्शन करके और छात्र-छात्राओं का ब्रह्मचर्य जब नष्ट हो जायेगा, तो वहां अधिकार रह जायेगा। वह अधिकार, क्योंकि उसमें कर्त्तव्य की भावना नहीं आ सकती, क्योंकि जब राजा ही भ्रष्ट हो गया, राजा कृत हो गया है, शरीर का राजा ब्रह्मचर्य कहलाता है, जब शरीर का राष्ट्र ब्रह्मचर्य मानो देखो, वह चित्रावलियों में 'रंगनम् ब्रहे कृता' जब उनमें रत हो करके मानो देखो, यह ब्रह्मचर्य भ्रष्ट हो जायेगा, छात्र-छात्राएं दोनों भ्रष्ट्रता को जब प्राप्त हो जाते हैं तो वहाँ कर्त्तव्यवाद नहीं रहता वहाँ आलस्य और प्रमाद की भावना बलवती हो जाती है और जहाँ आलस्य और प्रमाद की भावना बलवती हो जाती है, वहाँ कर्त्तव्यवाद नहीं रहता, वहाँ अधिकार-अधिकार रह जाता है। अधिकार में मानो देखो, अनाधिकार रह करके राजा के राष्ट्र में रक्तभरी क्रांतिया। आ जाती हैं। और, वह क्रांतिया। क्या करती हैं कि वह राजा के राष्ट्र को नष्ट करती हैं। वह अपने मानो सतीत्व को नष्ट करने लगती हैं। मेरी पुत्रियों के श्रृंगारों को नष्टकरने लगती हैं। परिणाम यह होता है कि अग्नि के काण्ड हो जाते हैं।

देखो, यह समाज, 'अप्रतिम् ब्रह्मः' मैं इसलिए यह वाक् उच्चारण करने लगता हू।, मुझे मेरे प्यारे महानन्द

जी के वह दो शब्द स्मरण आ गये हैं। उनकी विवेचना तो मैं दे नहीं पाता। परन्तु यह परम्परागतों से चला आ रहा है। कहीं मानो देखो रूद्र है, कहीं सम्भव है, इसी प्रकार यह जगत् चल रहा है। परन्तु इसमें देखो जहां मानव अपने में कर्त्तव्यवादी बन जाता है, तो समाज पवित्र बन जाता है। यह महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में मानो देखो यह सर्वत्रता थी। विद्या का अध्ययन हो रहा है। वर्ण-व्यवस्था का निर्माण विद्यालयों में होता है। वर्ण-व्यवस्था का निर्वाचन हो रहा है। वर्ण-व्यवस्था का निर्माण कौन करता है? जो आयुर्वेद के मर्म को जानता है। जो मानो देखो वेद के मर्म को जानता है। राष्ट्रीय प्रणाली का निर्माण हो जाता है। राष्ट्रीय प्रणाली मानो देखो, आज मैं राष्ट्र के ऊपर अपना विचार देने लगा हू।, यह तो बड़ी ही धृष्टता है, आध्यात्मिकवाद से देखो राष्ट्रवाद में चला गया। क्यांकि मुझे तो यह उच्चारण करना था कि मानव जब आध्यात्मिकवाद में चला जाता है, लोक-लोकान्तरों की गणना में लग जाता है, कर्त्तव्यवादी बन जाता है, तो उस मानव को ब्रह्मवेत्ता बन करके राष्ट्र की आवश्यकता ही नहीं रहती। परन्तु देखो, जो कर्तव्यवादी प्राणी होते हैं, उन्हें, राष्ट्रवाद की आवश्यकता नहीं, वह अपने आत्मत्व क्या आत्मवान बन करके सागर से पार हो जाते है।

जड़ चेतन में प्रभुदर्शन

आज का हमारा विचार यह क्या कह रहा है? आज का हमारा विचार यह कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए उस परमपिता परमात्मा को हम ध्यानवस्थित होते हुए, जड़ और चेतना के ऊपर विचार-विनिमय करते जायें। मेरे प्यारे! देखो, प्रभु जड़ में और चैतन्य में, दोनों में ही रत रहने वाले हैं। मेरे पुत्रो! ज्ञान व प्रयत्न आत्मा का मौलिक गुण है, वही गुणाधानम् होते हुए शरीरों की प्रतिभा में रत हो जाते हैंॅ वही शून्यता में प्राप्त होते हैं। बेटा! पर्वत क्या, यह लोक-लोकान्तर उसी की आभा में दृष्टिपात आते रहते हैं। 'ब्रह्मे' मानो परमपिता परमात्मा का यह जगत् है, यह जड़ और चेतना दोनों में निहित है और दोनों के गर्भ में परमात्मा दृष्ट्रिपात् आता है। इसीलिए अन्तिम सूत्र हमारा यह है कि हम संसार की प्रत्येक वस्तु में रमण कर जायें। मानो अपनी विचित्र उड़ानें उड़ जायें, ज्ञान में, विज्ञान में, राष्ट्र में, अराष्ट्र में। परन्तु जब भी वह आता है, मानो भ्रमण करके उसी स्थली पर आ जाता है। कहाँ? कि यह सब प्रभु का आंगन है। और, मुनिवरो! देखो, प्रभु के जड़ और चेतन के रूप में अपने को ही जानने का प्रयास करता है। मेरे प्यारे! देखो, जहाँ से वह प्रारम्भ हुआ था, वहीं आ करके लुप्त हो जाता है। वहीं वह मानो देखो, शून्य बिन्दु से विकास हुआ तो शून्य बिन्दु में आ करके शून्यता को प्राप्त करके वह अपने में आत्मवान् बन करके प्रभु की चेतना में रत हो जाता है। यह है, बेटा! आज का वाक्।

शब्द-चित्र विज्ञान

आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि सर्व जगत् मानो एक संकल्प मात्र है। यह सर्व जगत् मानो देखो संकल्प से एक-एक परमाणु में निहित है। परमपिता परमात्मा ने एक परमाणु में ब्रह्मांड को निहित कर दिया है। एक परमाणु को विभक्त करने से ब्रह्मांड का दर्शन होता है। एक मानो देखो स्थली को विभक्त करने से ही बेटा! इसमें ब्रह्मांड दर्शन होता है। एक मानव का शब्द है, वह परमाणुओं से, जैसे मधु मक्खी होती है, परन्तु देखो वह राज-रानी होती है उसके अन्तर्गत नाना मक्खियां। रमण करती रहती हैं। इसी प्रकार जब मानव का एक शब्द जाता है अन्तरिक्ष में, उस शब्द में मानो देखो एक प्रेत नाम का परमाणु होता है और उस परमाणु के साथ उसी मानव के परमाणु जिस मानव का शब्द है, उसी मानव के, देखो उतने आकार का परमाणु बन करके चित्रों के साथ में, वैदिकता के साथ में, बेटा! वह द्यौ में प्रवेश हो जाता है। वह उतने आकार का है। और जब भी मानव

यौगिकवाद में गया है, अनुसन्धान किया है तो वह चित्र मानो उसके साक्षात् दृष्टिपात् आते रहे हैं।

तो बेटा! विज्ञान तो अपनी स्थलियों में बड़ा विचित्र रहा है। आज मैं इस सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा नहीं, विचार केवल यह है कि आज, बेटा! देखो यह जगत् संकल्प में हैं। एक परमाणु के संकल्प में अरबों परमाणु हैं, जो गतिवान हो करके शब्द अपनी स्थलियों में रत हो जाते हैं। मेरे प्यारे! देखो इसलिये 'वेदं ब्रह्मः' यजमान अपनी देवी से कहता है, ''देवी! यह संसार संकल्प हैं यज्ञ भी संकल्प है और संकल्प मात्र से हम अपने प्रत्येक शब्द को चित्रों के साथ द्यौ में प्रवेश कराना चाहते है।'' तो बेटा! विज्ञान अपनी स्थलियों में विचित्र रहा है। याग अपनी स्थलियों में महान् देव-पूजा के रूप में रत होता रहा है। बेटा! मैं देव-पूजा की एक भूमिका बना रहा हूँ। यह भूमिका बन रही है। जब मैं देवताओं के सम्बन्ध में विचार-विनियम करता रहूँगा। वेद का पाठ आता रहेगा। उसके सम्बन्ध में विचार होता रहेगा। आज का विचार अब समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन। वभीलपुर, हापुड़।

१० देवपूजा पर अनुसन्धान 24 03 1988

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भा।ति, कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। क्योंकि प्रत्येक वेद-मन्त्रों में उस परमपिता परमात्मा की महिमा अथवा उसके गुणों का गुणवादन होता रहा है। क्योंकि जिस भी वेद-मन्त्र के ऊपर तुम विचार-विनिमय करते हो उसी वेद-मन्त्र में, बेटा! ब्रह्मांड की प्रतिभा निहित रहती है और यह संसार रूपी जो एक अनुपम मानव यज्ञशाला के रूप में यह ब्रह्मांड प्रायः सभी को दृष्टिपात आ रहा है, उस परमपिता परमात्मा की महती अथवा उसकी महानता का प्रायः वर्णन होता रहता है और उस परमपिता परमात्मा को यज्ञोमयी स्वरूप माना गया है। वह परमपिता परमात्मा महान और याग उसका आयतन, उसका गृह, उसका सदन है। मानो वह उसी में ओत-प्रोत रहने वाला है। तो इसीलिए हमें उस परमपिता परमात्मा को अपने अन्तरात्मा में यानावस्थित हो करके और इस ब्रह्मांड के ऊपर चिन्तन और मनन करना चाहिए।

आज का हमारा वेद-मन्त्र नाना प्रकार के यागों के ऊपर अपनी विवेचना कर रहा था और यह कह रहा था कि यह संसार भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों में निहित रहने वाला है। आज मुझे कहीं से यह प्रेरणा आ रही है कि याग के सम्बन्ध में अपना कुछ विचार दिया जाये। याग के ऊपर तो हम बहुत समय से ही अपना विचार देते रहते हैं और वह याग अपनी स्थलियों में सदैव रमण करता है और उसी के द्वारा वह विष्णु रूप बन करके, उसी के द्वारा हम अपने कल्याण और अपनी मानवीयता की विवेचना में सदैव लगे रहते हैं। क्योंकि परमपिता परमात्मा हमारा उपास्य देव है, वह सत् है, वह चित्त् है और वह आनन्द है। आज हम परमपिता परमात्मा की प्रायः उपासना के सम्बन्ध में तो विशेष नहीं, क्योंकि हमारे यहां जैसे परमपिता परमात्मा का नाम विष्णु है, इसी प्रकार यज्ञोमयी विष्णु कहा है। क्योंकि याग एक विष्णु है, जो रक्षा करने वाला है और जो रक्षा करता है, वह हमारा उपास्य देव माना गया है।

प्रभु-उपासना

उपासना का अभिप्रायः बड़ा अनूठा है। आचार्यों ने उपासना के सम्बन्ध् में इतना कहा है कि उसके वाक्यों और उसकी आज्ञा के अनुसार अपने जीवन को क्रिया में लाना ही मानो वह उपासना कही गई है। परमात्मा नम्र है तो मानव को नम्र हो जाना चाहिये। परमात्मा निरभिमानी है, तो मानव को निरभिमानी बन जाना चाहिये। परमात्मा सर्वव्यापक है, तो मानव को भी व्यष्टि से समष्टि में चला जाना चाहिये। यदि वह परमपिता परमात्मा रचयिता है, तो मानव को भी मानो भिन्न-भिन्न प्रकार की रचनाओं में रत हो जाना चाहिये। यदि परमपिता परमात्मा सृष्टि का रचयिता है, निर्माण करने वाला है, तो मानव को अपने जीवन का निर्माण करना चाहिये और जीवन में एक महानता का प्रायः दर्शन करता रहे। आओ, मेरे प्यारे! विचार क्या? हम परमपिता परमात्मा की आज्ञा का पालन करें। जैसे परमपिता परमात्मा को वेद में रक्षक कहा है इसलिए मानव को भी रक्षक हो जाना चाहिये। वह सत्-चित्-आनन्द है, मानव को भी सत् और चित्त और आनन्द में रत हो जाना चाहिये और वह आनन्द जब तक प्राप्त नहीं होगा जब तक हम आनन्दमयी जो स्रोत है, उसको हम नहीं जान सकेंगे।

यज्ञोमयी विष्णु की उपासना

आओ, मेरे पुत्रो! मैं इस सम्बन्ध में विशेष विवेचना न देता हुआ केवल यह कि आज का हमारा वेद-मन्त्र कह रहा था, 'यागां यज्ञं भवितं प्रह्वा वरूणां ब्रह्मे वाचन्नमं ब्रह्मः', मेरे प्यारे! देखो, याग को हमारे यहाँ विष्णु और ब्रह्मा के रूप में पुकारा गया है। मानो इसका वर्णन भी होता रहा है। यज्ञोमयी विष्णु जो कल्याण करने वाला है,

यह विष्णु कहलाता है। इसलिए याग भी हमारा कल्याण करता है। हम हूत करते हैं, देवताओं को भोज्य प्रदान करते हैं, अग्नि के मुखारबिन्द में, क्योंकि अग्नि देवताओं का मुख माना गया है और उसके मुख में, जब हम साकल्य प्रदान कर देते हैं, तो वह मानो ब्रह्मे मानो वह सर्वत्र देवता उसे पान करते हैं। उन्हीं देवताओं के द्वारा यह समाज ऊ।चा बनता है, यह लोक ऊ।चा बनता है, ये देवता मानो अपनी-अपनी आभा में इस संसार को लाभान्वित करते रहते हैं। तो वह लाभ प्राप्त होना चाहिये। तो मेरे पुत्रो! इसीलिए हम यज्ञोमयी विष्णु की प्रायः याचना करते रहते हैं।

ब्रह्मवेत्ता, यागवेत्ता वैशम्पायन

आओ, मेरे पुत्रो! मैंने कई कालों में, तुम्हें याग के सम्बन्ध में बहुत से विचार दिये हैं। आज भी मुझे बहुत से विचार स्मरण आते रहते हैं। परन्तु आओ, आज मैं तुम्हें याग के सम्बन्ध में, बेटा! देखो, ऐसी आभा में ले जाना चाहता हू। जहां प्रायः हमारे यहां, 'यज्ञं ब्रह्मः लोकाम्' जैसे महाराजा अश्वपति के यहां, देखो वैशम्पायन ऋषि महाराज का याग में परिणत हो जाना, याग का प्रारम्भ हो जाना, नाना प्रकार के वैज्ञानिकों को उस याग के चित्रों में लाना और उन्हें मानो चित्रों में दृष्टिपात करते रहते थे। तो मेरे प्यारे! देखो इसी सन्दर्भ में आज, मुझे बेटा! मैं तुम्हें त्रेता के काल में ले जाना चाहता हू।, जहां त्रेता के काल में मैंने कई समय तुम्हें याग के सम्बन्ध में वे विचार दिये हैं, आज भी मैं उन विचारों की पुनरूक्ति करना चाहता हूँ। मेरे पुत्रो! मुझे स्मरण आता रहता है, मानो देखो महर्षि वैशम्पायन, जिनकी चर्चा हम कई समय से कर रहे हैं, और क्योंकि वैशम्पायन, ऋषि थे, याज्ञिक थे, ब्रह्मवेत्ता थे, वह चौसठ प्रकार के याग के कर्म-काण्ड को जानते थे। मानो देखो उनकी प्रतिक्रियाएं उनका कर्मकाण्ड, अध्वर्यु कहाँ रहना चाहिए, यजमान के विचार केसे हो, यजमान किस स्थली पर विद्यमान हो करके और अपने 'घृतम्' श्रद्धामयी अपने मुखारबिन्द का दर्शन करता रहे, ऐसा मानो देखो याग के सम्बन्ध् में वैशम्पायन अपने में विचारते रहते थे।

यज्ञस्थ-चित्रदर्शन की जिज्ञासा

मेरे प्यारे! एक समय महर्षि वैशम्पायन, महाराजा अश्वपति के याग में, वृष्टियाग में बेटा! उनका आगमन हुआ और वह अपने आश्रम में आ गये। दण्डक वनो में उनका आश्रम था। वह दण्डक वन में जब विराजमान हो गये, तो मानो जब निद्रा की गोद में जाने लगे, तो बेटा! हमारे यहाँ ऐसे-ऐसे ऋषि हुए हैं, जिनको वेद-मन्त्रों के स्मरण किये बिना, या उनकी ध्वनि ध्वनित किये बिना, उनको निद्रा तक नहीं आ पाती थी। वह सुषप्ति में नहीं जा पाते थे। तो महर्षि वैशम्पायन जब निद्रा की गोद में आये, तो वह चिन्तन करने लगे। वेद-मन्त्र उन्हें स्मरण आने लगा और वेद-मन्त्र यह कह रहा था, 'चित्रं रथं वृत्यं भवतं ब्रह्मे यजमानः रथश्चप्रहृः लोकः', वेद-मन्त्र यह कह रहा था कि यजमान का रथ बन करके 'अग्निं चित्रम्', मानो देखो अग्नि की धाराओं पर चित्र बन करके द्यौ-लोक को जाता है। मेरे प्यारे! यह वेद-मन्त्र जब स्मरण आ रहा था, इसी वेद-मन्त्र के ऊपर अध्ययन करने लगे। अध्ययन करते-करते, बेटा! रात्रि का प्रारम्भ था, अन्तिम चरण समाप्त हो गया, देखो, उस वेद-मन्त्रों के ऊपर आगे पश्चात् में और भी नाना मन्त्र थे, न्यौदा में। तो अध्ययन करते-करते, बेटा! प्रातःकाल हो गया। सूर्य उदय हो गया। सूर्य के उदय होने पर, मुनिवरो! देखो, ब्रहे मानो देखो उन्होंने अपना व्रत नहीं त्यागा। तो मुनिवरो! उनके निकटतम महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज का आश्रम था। महर्षि विभाण्डक मुनि ने विचारा कि 'ऋषि ने अपने आसन को नहीं त्यागा है, क्या कारण है? कल ही तो महाराज अश्वपति के याग में से उनका पदार्पण हुआ था।' तो महर्षि विभाण्डक मुनि उनके द्वार पर पहु।चे। विभाण्डक मुनि ने दृष्टिपात् किया, 'चिन्तन हो रहा है।' ऋषि ने कहा ''कहो,

भगवन्! आप केसे गम्भीर मुद्रा में, मानो चिन्तन में रत हो''? उन्होंने कहा, ''प्रभु! मैं चिन्तन कर रहा हूँ। परन्तु मैं एक वेद-मन्त्र आया, न्यौदा में, कि यजमान का रथ बन करके, द्यौ-लोक को जाता है और मैं उस रथ को दृष्टिपात् करना चाहता हूँ। हे प्रभु! मेरी यह कामना है कि मैं रथ को अपने में साक्षात्कार दृष्टिपात् करना चाहता हूँ।

ऋषि-मुनियों का जिज्ञासा-संगतिकरण

तो मेरे प्यारे! वह भी 'विभाजन अवृत्तम्' वेद-मन्त्रों में लग गये और वेद-मन्त्रों की विभक्तियों में रत हो करके मानो देखो उसी का अनुसन्धान करने लगे। अपने में कोई निपटारा नहीं हुआ, जब निपटारा नहीं हुआ, तो कुफछ ऋषि-मुनियों का एक समूह, जिसमें ऋषि प्रह्वाण, महर्षि शिलभ, महर्षि दालभ्य, महर्षि रेणकेतु, महर्षि वृत्तिका और ब्रह्मचारी कवन्धी, ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी रोहिणी कृतिका और चाक्रेतु ऋषिवर, मेरे पुत्रो! देखो नाना ऋषि-मुनियों का एक समाज भ्रमण करते हुए, जिज्ञासुओं का एक समाज महर्षि वैशम्पायन के आश्रम में आया। और महर्षि वैशम्पायन बोले, ''आओ, भगवान्!'' वे विराजमान हो गये। ऋषियों ने कहा, ''भगवन्! आप गम्भीर मुद्रा में दृष्टिपात् आ रहे हैं, कोई मनन चल रहा है?'' तो उस समय ऋषि ने कहा, ''प्रभु! यह वेद-मन्त्र है, इसके ऊपर अनुसन्धान कर रहा हू।, परन्तु अपने में कोई निपटारा नहीं हो रहा है।'' मेरे प्यारे! वह ऋषि भी उस अनुसन्धान में मानो रत हो गये।

जब सायंकाल, मानो देखो मध्य दिवस समाप्त हुआ, तो मध्य दिवस के पश्चात् श्वेत ऋषि ने कहा, ''प्रभु! आप जो इस चिन्तन में लगे हुए हैं, हमारा विचार ऐसा है कि यहां से आप गमन कीजिये और भ्रमण करते हुए अयोध्या में चलते हैं, एक याग का आयोजन करायेंगे और वहां इसका निर्णय हो सकेगा।'' मेरे प्यारे! यह वाक् सब ऋषियों के हृदयों में समाहित हो गया और वहां से उन्होंने अपने समूह को ले करके, वहां से प्रस्थान किया और भ्रमण करते हुए, बेटा! देखो, 'अमृतं सम्भवां', सांयकाल, को बेटा! देखो महर्षि श्वेती मुनि महाराज के आश्रम में पहु।चे, और श्वेती मुनि महाराज ने उनका आदर किया। कन्दमूल इत्यादि से देखो, अतिथि के उपदेश करने के पश्चात सांय, 'अप्रतिम्' देखो विश्राम कराया और वहां उन्होंने 'वृत्यं ब्रह्मे', मेरे प्यारे! प्रातःकाल होते ही वहां से उन्होंने प्रस्थान किया और भ्रमण करते हुए बेटा! उनका अयोध्या में आगमन हुआ।

नित्य यागी राम के उपदेश

अयोध्या में जब राम के यहां पहु।चे, तो बेटा! नित्यप्रति प्रातःकालीन् याग होता था। बेटा! याग सम्पन्न हो गया था, राम की उपदेश-मंजरी प्रारम्भ हो रही थी, और राम का यह उपदेश चल रहा था राष्ट्रवेत्ताओं के मध्य में और यज्ञशाला में वृत्यों में! मेरे प्यारे! उन्होंने कहा, 'हे राष्ट्रवेत्ताओं! तुम्हें यह प्रतीत है कि तुम्हारी जो यज्ञशाला है, इसका निर्माण क्यों हुआ है? क्योंकि राजा को यज्ञशाला का निर्माण करने का अधिकार है।'' मेरे प्यारे! देखे राजा को नम्र और याग में परिणत होना ही मानो वह अपने राष्ट्र को ऊ।चा बनाना चाहता है। राम की उपदेश मंजरी प्रारम्भ हो रही थी, ''राष्ट्रवेत्ताओ! मेरी इच्छा यह है कि हमारी यह जो अयोध्या नगरी है, इस अयोध्या नगरी का सबसे प्रथम जो निर्माण किया था, वह भगवान् मनु ने किया था और मनु जी नौका में रहते थे, नौका में वास करते थे, और वह मानो देखो प्रातः और सायंकाल याग करते थे और राष्ट्र का निर्माण करते थे। क्योंकि भगवान् मनु से पूर्व कोई 'निर्माणं ब्रह्मः' मानो देखो कोई 'यज्ञ संब्रहा' मानो राष्ट्र का निर्माण करने वाला नहीं था। तो विचार क्या? भगवान मनु ने सबसे प्रथम, देखो राष्ट्रीय पद्धति का निर्माण किया और निर्माण भी याग के माध्यम से किया और सबसे प्रथम जो नगरी का निर्माण किया, उन्होंने अयोध्या पुरी का निर्माण किया। क्योंकि यह जो अयोध्या पुरी है, यह आठ चक्रों वाली और नौ द्वारों वाली ऐसी यह ब्रह्मपुरी है। ऐसी ही विष्णु-पुरी का निर्माण

किया गया। तो मानो देखो इसलिए आज हम भी उस अयोध्या में विद्यमान हैं जिस अयोध्या में हमारे पूर्वज नाना प्रकार के यागों में परिणत रहे हैं। देखो, महाराज सगर हमारे महापिता थे, उन्होंने याग किया, अश्वमेघ, अग्निष्टोम और वाचवीक्तम् याग। नाना प्रकार के याग प्रायः होते रहते थे। परन्तु देखो महाराजा भगीरथ, हरिकेतु, ये नाना राजा इस प्रकार के हुए है। परन्तु देखो 'अन्ते ब्रह्मः' हमारे महापिता महाराज दिलीप ने तो मानो गुरु की सेवा करते-करते और अपनी नन्दिनी की सेवा करते-करते यागों में परिणत रहे। मानो देखो, इसी प्रकार महाराजा अज और पितर राजा दशरथ इत्यादि सभी के द्वारा इस अयोध्या में याग का आयोजन होता रहां''

तीन ऋण और याग

मेरे प्यारे! इसलिए राम ने कहा, ''हमारे यहां प्रत्येक गृह में याग होना चाहिए। हमारे यहां याग के सम्बन्ध में कहा जाता है, मानव जब संसार में आता है तो तीन प्रकार के ऋणों को ले करके आता है, एक ऋण मानो देखो मातृ-ऋण कहलाता है। देखो माता-पितर का जो ऋण है वह ऋणी बन करके आता है। एक देवताओं का ऋण कहलाता है। मेरे प्यारे! एक 'ब्रह्म ब्रहे' ऋण है। तो यह तीन प्रकार का ऋण मानव के समीप रहता है। राजा का कर्त्तव्य है, जब राजा अश्वमेध या गो-मेध याग करता है, तो एक-दूसरे के ऋणों से ऋणी नहीं रहने देता। तो इसी प्रकार हे राजन्! ब्रहे मानो देखो हमारा भी यह कर्त्तव्य है राष्ट्र वेत्ताओ! क्या हमारे समाज में, एक-दूसरे का ऋणी नहीं रह जाना चाहिए और देवताओं का ऋण भी, देवपुरी में यह आत्मा विद्यमान रहती है, जिसमें गुरुत्त्व है, तरलत्व है और अग्नि तेजोमयी है यह सर्वत्र मानो इसमें विद्यमान रह करके वह देवताओं के लोक में यह आत्मा वास करने वाला है। तो इसीलिए हमें इस लोक के ऊपर याग में परिणत हो जाना चाहिए। हम उसके ऋणी हैं, क्योंकि देवताओं को यदि हम हूत नहीं दे सकते, अग्नि के मुख में चरू को प्रदान नहीं कर सकते, तो वायुमण्डल, हमारा गृह, हमारे शरीर में रहने वाली आत्मा का जो लोक है वह मानो देखो याग से वंचित रहने से, इस में अग्रतम यह ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा से शून्य हो जाता है। तो मानो ऋणों से ऋण होना चाहिए।''

ऋणों से मुक्ति

भगवान राम की यह उपदेश-मंजरी प्रारम्भ हो रही थी कि ''हमें देवताओं का ऋण और ऋषियों के ऋण से वंचित नहीं रहना चाहिए, जो मानो देवताओं का ऋण, याग करना प्रातःकालीन् याग में परिणत होना है। और द्वितीय जो ऋण है, वह देवताओं का ऋण कहलाता है। और वह तृतीय जो ऋण है वह ऋषि-ऋण कहलाता है। ऋषि-ऋणों का अभिप्रायः यह है कि जो उन्होंने हमें आज्ञा दी है, जो उपदेश दिया है, जिसके द्वारा हम अपने जीवन को ऊ।चा बना सकते हैं। ऐसा जो ऋषि है, उसकी आज्ञा का हमें पालन करना चाहिए, उसकी आज्ञा का पालन करेंगे तो ऋषि-ऋण से हम उऋण हो जायेंगे। क्योंकि ऋषि उसे कहते हैं जो तपस्वी होता है, जो ज्ञान और विज्ञान से गुथा हुआ होता है। ऐसे में जो आज्ञा का पालन, आज्ञा का 'अग्रतम्' निर्णयात्मक करते हैं, तो उसके ऊपर हमें अपने जीवन को निर्धारित कर देना चाहिए अथवा समर्पित कर देना चाहिए।''

तो मानो देखो, तीन प्रकार के ऋणों से मानव को उऋण होना है। राम का उपदेश चल रहा था ''राजा के राष्ट्र में बुद्धिजीवी प्राणी, ऋषित्व और एक-दूसरे का ऋणी जब राजा का राष्ट्र नहीं रहेगा तो वह राष्ट्र पवित्र कहलाता है। जैसे माता-पिता का ऋण है, प्रातः कालीन् ब्रह्मचारी याग करता है, याग करने वाले माता और पितर भी वहीं विद्यमान है, परन्तु याग हो रहा है, और वह 'यागां ब्रह्मणां' देखो उसके ऋणों से उसी माता का वह आतिथ्य करता है, उसी माता की वह सेवा में, आज्ञा का पालन करता है, और पालन करता हुआ मानो देखो आज्ञा में 'प्रह्रे' वह अपने में रत हो करके चरणों की वन्दना करता है।''

ऋषि-समूह का अयोध्या आगमन

तो आओ, मेरे प्यारे! मैं विशेष विवेचना न देता हुआ केवल विचार-विनिमय यह कि हम अपने ऋणों से उऋण हो जायें। जब राम की यह उपदेश-मंजरी प्रारम्भ हो रही थी, इतने में ऋषि-मुनियों का समूह मानो विद्यमान हो गया विद्यमान हो करके, बेटा! अपनी-अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो गये। राम का उपदेश चल रहा था, ''हे राष्ट्रवेत्ताओं! वह परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप है इसीलिए राजा के राष्ट्र में गृह-गृह में याग होना चाहिए। प्रातःकालीन सुगन्धि होनी चाहिए।'' जब प्रत्येक गृह से सुगन्धि होनी प्रारम्भ होती है, विचारों की सुगन्धि, साकल्प की सुगन्धि् और मनोनीत की सुगन्धि यह सुगन्धि जब समाज और प्राणी में बन जाती है, तो बेटा! वहाँ एक-दूसरे का ऋणी नहीं रह पाता, वहाँ ऋणों से उऋण हो जाता है।

तो मेरे पुत्रो! देखो, 'ब्रह्मणां ब्रहे' यह विचार प्रारम्भ हो रहे थे। इन विचारों में 'न्यौदं ब्रहे', ऋषि-मुनियों का समाज, जब अपनी-अपनी स्थलियों पर विद्यमान था, राम का उपदेश समाप्त हुआ, राम ने यही संक्षिप्त परिचय दिया कि ''हमारे राष्ट्र में महानता और पवित्रता और यौगिकवाद होना चाहिए।'' यह उपदेश दे करके, बेटा! वह मौन हो गये। उन्होंने दृष्टिपात् किया ''यह तेरा केसा सौभाग्य जागरूक हो गया हैं जो ऋषि-मुनियों वफा ब्रह्मवेत्ताओं का मुझे दर्शन हो रहा है।', अपने में बड़े आनन्दित हो करके, मेरे पुत्रो! देखो उन्होंने नतमस्तक हो करके उनके द्वार पर चारों विधाता बारी-बारी नमस्कार करने लगे। चरणों की वन्दना करने लगे। राम ने नतमस्तक हो करके कहा, ''हे ब्रह्मवेत्ताओ! मैं आज आश्चर्य कर रहा हा।, क्योंकि ऐसे-ऐसे तपस्वियों का आगमन होना, यह हमारे लिए बड़ा सुशोभनीय है, परन्तु देखो यह हमारा बड़ा सौभाग्य है। हम यह जानना चाहते हैं कि तुम्हारे आने का कारण क्या है? क्योंकि बिना समय के, बिना सूचना के, ब्रह्मवेत्ताओं का राष्ट्र में आगमन होना, कोई न कोई मूल है।'' मेरे प्यारे! ऋषि-मुनियों से जब प्रार्थना की तो महर्षि प्रह्वाण ने यह कहा कि ''महाराज! आपको प्रतीत नहीं है कि यह याग करना चाहते हैं और 'यागां ब्रह्मणां ब्रहे', हमारी इच्छा यह है कि तुम एक याग करो और हम अपने में मानो 'प्रश्नं ब्रहे'।'' राजा ने कहा कि ''हे भगवन्! यह तो हमारा सौभाग्य है, कि आप याग करना चाहते हैं।''

भगवान राम द्वारा शोध-यज्ञ का आयोजन

मेरे पुत्रो! राम ने आज्ञा पाते ही ऋषि-मुनियों को उनके कक्ष में पहु।चाया और शिल्पकारों को आज्ञा दी कि ''तुम यज्ञशाला का निर्माण करो''। और निमंत्रण देने प्रारम्भ हो गये। ऋषि-मुनियों को निमंत्रण देना बहुत अनिवार्य था। मेरे प्यारे! देखो सब षि-मुनियों को निमंत्रण गये और वह 'राजं प्रह्वा', राजा ने, मानो राम ने एक यज्ञशाला का निर्माण किया, शिल्पकारों ने यज्ञशाला का निर्माण किया और 'मानं ब्रह्मे लोकां वाचप्रह्वा', जब याग का 'प्रारम्भं ब्रहे वृत्तम्' जब यज्ञशाला का निर्माण हो गया, तो मेरे प्यारे! देखो राम ने ऋषि-मुनियों से कहा ''हे प्रभु! 'यागां ब्रह्मे', यह याग होने जा रहा है। आप, भगवन्! देखो, याग में पधारिये। ऋषिवर! आइये, वह आपका साकल्य एकत्रित हो गया है।'' बेटा! साकल्य एकत्रित हो गया। मानो त्रिवर्धा उत्पन्न हो करके, मानो देखो एकत्रित करके याग में सम्मिलित हो गये। भगवान राम यजमान बने। बेटा! देखो, राम के यज्ञ में सबका पदार्पण हो गया और मुनिवरो! निर्वाचन हुआ। उन्होंने देखो, महर्षि वैशम्पायन को उस याग का ब्रह्मा नियुक्त किया और उनमें से कोई उद्गाता बना, कोई अध्वर्यु बना। महर्षि वशिष्ठमुनि महाराज पुरोहित बने।

मेरे प्यारे! देखो, याग का प्रारम्भ होने लगा। ऋषि-मुनियों का आगमन हो गया था। ब्रह्मवेत्ता आ गये। परन्तु जैसे याग प्रारम्भ हुआ अग्नि-होत्र होने लगा, तो वही मन्त्र आ गया, 'चित्रं रथं ब्रह्मः चित्रो रथ प्रहे वाचन्न रथं ब्रह्मः

रथः।' मेरे प्यारे! देखो, राम ने कहा, ''प्रभु! यज्ञ प्रारम्भ हो गया हैं। अग्निहोत्र हो गया, अग्न्याधान हो गया है। हे प्रभु! अग्नि प्रचण्ड हो गई है, परन्तु यह वेद-मन्त्र क्या कह रहा है ? मैं इस वेद-मन्त्र को जानना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! वैशम्पायन और नाना ऋषियों

ने कहा कि ''वेद-मन्त्र यह कहता है कि यजमान का रथ बन करके द्यौ-लोक को जाता है। हम द्यौ-लोक में प्रवेश करना चाहते हैं, द्यौ-लोक में जाना चाहते हैं भगवन्! तो मेरे प्यारे! राम ने कहा, ''हमें वह निर्णय कराइये कि द्यौ-लोक में रथ केसे जाता है यजमान का? मैं रथ को दृष्टिपात् करना चाहता हू।, साक्षात् मेरे प्यारे! देखो, ऋषि-मुनि अपने-अपने चिन्तन में लग गये। दर्शनों से घटा रहे हैं कि अग्नि की धाराओं पर यह परमाणुवाद जाता है। यह द्यौ में प्रवेश करता है। शब्द भी द्यौ में प्रवेश कर जाता है। मेरे प्यारे! राम ने कहा ''नहीं, मुझे साक्षात्कार दर्शन कराइये।''

मेरे प्यारे! देखो, 'रुद्रो भवं ब्रह्मः' कोई वाक् नहीं आ पहुचा। परन्तु कुछ समय के पश्चात् महर्षि भारद्वाज अपने शिष्यों के सहित मानो अपने वाहन में विद्यमान हो करके, यज्ञशाला में उनका पदार्पण हो गया। महर्षि, वाल्मीकि, महर्षि कुरेतकेतु, महर्षि श्वेतनधन और देखो महर्षि विश्वामित्र और भी नाना ऋषियों का आगमन हो गया। मेरे प्यारे! जैसे ही भारद्वाज पहु।चे अपने वाहन में ब्रह्मचारिणी शबरी और महर्षि पणपेतु मुनि महाराज इत्यादि ब्रह्मचारी और ब्रह्म का चिन्तन करने वाले सब यज्ञ में पधारे। भारद्वाज बोले, ''राम! तुम्हारा निमन्त्रण गया। तुम्हारा याग शून्य है ?'' उन्होंने कहा, ''प्रभु! यह वेद-मन्त्र है, और वेद-मन्त्र यह कहता है कि यजमान का रथ बन करके जाता है और यह यज्ञशाला एक रथ है, मैं इस रथ को दृष्टिपात् करना चाहता हू।, ''प्रभु! मेरी यह मनोकामना है।'' मेरे प्यारे! देखो राम के इस वाक् को पान करके महर्षि भारद्वाज बोले, ''हे राम! तुम इन ब्रह्मवेत्ताओं का अपमान तो नहीं कर रहे हो?'' उन्होंने कहा, ''प्रभु! मेरे में इतनी सत्ता कहां है? मैं शक्तिहीन हू।, इसमें जो मैं ऋषि-मुनियों का अपमान कर सकू।। प्रभु! मेरे से तो अपना ही अपमान नहीं हो पाता। अपनी अन्तरात्मा के लिए मैं सदैव चिन्तन और धिक्कारता रहता हूँ। हे प्रभु! मैं इस बुद्धिमान या ब्रह्मवेत्ता समाज का केसे अपमान कर सकता हू। ?

महर्षि भारद्वाज के यन्त्रों में द्यौगामी रथ-चित्रावली का दर्शन

महर्षि भारद्वाज ने वह स्वीकार कर लिया और उन्होंने ब्रह्मचारिणी शबरी से कहा, ''जाओ, अपने आश्रम में चले जाओ। कजली वनों से देखो, यन्त्रों को लाया जाये। चित्रावलियों को लेने के लिए देखो, वह पणपेतु मुनि महाराज की कन्या शबरी ने वहाँ से गमन किया और कजली वनों से अपने वाहन में, बेटा! यन्त्रों को लाया गया। यन्त्र स्थिर कर दिये। यन्त्रों में देखो, महर्षि भारद्वाज बोले, ''हे राम! तुम याग का प्रारम्भ करो।'' और महर्षि वैशम्पायन से कहा, ''याग का प्रारम्भ किया जाये।'' अग्नि प्रदीप्त हो गई और जैसे 'स्वाहा' उच्चारण करते थे, मानो देखो उनके यन्त्र में उनकी चित्रावली में, वह शब्द के साथ में चित्र, शब्द के साथ में क्रियाकलाप, मेरे प्यारे! अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके, द्यौ-लोक में जाते हुए दृष्टिपात् आने लगे। वही उतने आकार की यज्ञशाला, उतने ही आकार के देखो विद्यमान होने वाले और वह यज्ञशाला का रथ बन करके द्यौ-लोक को जाता हुआ राम को दृष्टिपात आने लगा। भारद्वाज ने कहा, ''राम! दृष्टिपात् करो।'' मेरे प्यारे! देखो महर्षि वैशम्पायन के हर्ष की कोई सीमा ने रही। मुनिवरो! देखो उन्होंने वह निर्णयात्मक पाया। ।

तो मेरे प्यारे! मुझे कुछ ऐसा स्मरण आ रहा है कि जैसा आज हम उस यज्ञशाला में विद्यमान हों, ऐसा हम अपने में अनुभव कर रहे हैं। मानो देखो, याग प्रारम्भ हो रहा है, चित्रावलियों में यन्त्रों का चित्रण हो रहा है।

चित्रणां मानो देखो 'सहर्षं ध्वनं ब्रहे', मेरे प्यारे! देखो 'ब्रह्मणां लोकां वाचः', यज्ञ प्रारम्भ रहा, चित्रों का दर्शन होता रहा, बेटा! छः माह तक वह याग का प्रारम्भ रहां छः माह के पश्चात् राम ने, बेटा! देखो याग सम्पन्न किया और छः माह के पश्चात् बेटा! याग में वह चित्रों का दर्शन करते रहे। तो महर्षि भारद्वाज मुनि ने यह कहा, ''राम! मेरे द्वारा ऐसी-ऐसी चित्रावलिया। हैं, मानो देखो जो एक-एक रक्त के बिन्दु से, जिस मानव का रक्त का बिन्दु है, उनका चित्र उसमें साक्षात्कार दृष्टिपात आ जाता है। ।

तो मेरे प्यारे! देखो विज्ञान अपने में अनूठा है। विज्ञान अपने में महान् है। तो मेरे प्यारे! देखो याग सम्पन्न हो गया। याग के सम्पन्न होने के पश्चात् राम ने ब्रह्मवेत्ताओं को उदरपूर्ति के लिए मुद्राएं, गो इत्यादि दान, देखो, प्रदान किया और कुछ दक्षिणा भी दी। परन्तु देखो, वहां वह 'यज्ञं ब्रह्मः' अब मैं अपने वाक्यों को विराम दे रहा हूँ। अब मेरे प्यारे! महानन्द जी अपने दो शब्द उच्चारण करेंगे

पूज्य महानन्द जीः 'ओ३म् दधिमां रथं यज्ञं गतः'। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! अभी-अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मानो याग के सम्बन्ध में अपनी कितनी विचित्र उड़ानें उड़ रहे थे। उनकी उड़ानें सदैव इसी प्रकार की रही हैं। आज भी, जहां हमारी आकाशवाणी जा रही है, वहां भी एक याग सम्पन्न हुआ है और मैं अपनी अन्तरात्मा से सदैव मेरा जो अन्तर्हृदय है, वह यजमान के साथ रहता है और यजमान के लिए केवल अपने दो शब्द उच्चारण करने के लिए, मैं प्रायः प्रार्थना करता रहता हू।, पूज्यपाद गुरुदेव से। आज, मेरा केवल यही कहना है कि हे यजमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे।

वाममार्गी काल की विडम्बना

मानो देखो यह काल जो मैंने कई काल में वर्णन किया है कि यह वाम-मार्ग की प्रतिभा वाला काल है। जहां राजा और प्रजा, सब मानो देखो सुरा और सुन्दरी दोनों में परिणत हो रहे हैं। यह बड़ा आश्चर्य हो रहा है। जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के इन शब्दों को या राम की गाथा, या राम का विचित्र यह उपदेश, जब श्रवण करने के लिए तत्पर होते हैं, तो देखो राजाओं का समन्वय नहीं किया जाता, राष्ट्र का समन्वय नहीं किया जाता। आज तो देखो धर्म और मर्यादा, मानो देखो, केवल द्रव्य की लोलुपता में परिणत होने जा रही है। आज मैं इस वाक् की पुनरूक्ति मानो पुनः से देना नहीं चाहता हूँ। विचार केवल यह कि आज का जो 'ब्रह्मणे' मानो एक याग में अपने यजमान को यही उद्गीत गाने आया हू।ँ हे यजमान! तेरे जीवन का प्रतिभा महान् बनी रहे! और तेरे गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहे! जिस गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता हैं, वह गृह सौभाग्यशाली होता है और जिस गृह में द्रव्य का दुरूपयोग होता है, वह गृह मानो सौभाग्यशाली नहीं होता। वह आभागा होता है इस संसार में। तो इसीलिए मैं यह कहता रहा हू।, हे यजमान! मेरा अन्तरात्मा यह पुकार कर कहता है। पूज्यपाद गुरुदेव की तो बड़ी विचित्र उड़ान रहती है। वहां यजमान कितने प्रश्न करता है, जब उसका निर्वाचन किया जाता है। भयंकर वनों में ऋषि-मुनियों को यज्ञशाला में पदार्पण कराते हुए मानो उसे अपने हृदय की और अग्रहा और 'आचमनं ब्रह्मे' ऋषि का दोनों के हृदय का मिलान होता रहा है। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का वह समय भी, वह काल भी मुझे स्मरण आता रहता है, जब कई-कई वर्षों पूर्व मानो देखो, जब अनुसन्धान में लगे रहते थे तो याग का समय पर्याप्त नहीं होता था, परन्तु नम्रता से मानो देखो प्रार्थना करने से वह देखो उनका आगमन होता, उस आगमन के अनुसार साकल्य और चरु को एकत्रित करने के पश्चात् प्रायः याग होता रहां

शासक का अव्यवहारिक चिन्तन

भगवान राम के यहां जिसकी आज चर्चा चल रही है, उस राष्ट्र को दृष्टिपात् करने से या देखो, मेरे

पूज्यपाद गुरुदेव ने जो दृष्टिपात् किया है, उस आभा के अनुकूल जब विचार किया जाता है तो ऐसा मानो वहां राष्ट्र के याग दृष्टिपात् होते रहे हैं। क्योंकि राजा अपने में अब यह स्वीकार करने लगा है कि यदि तूने याग कर लिया तो मुझे मोहम्मदवादी यह न कहने लगे, यह तो आर्य और महान् बन गया है, 'परन्तु देखो यह तो हिन्दुत्व बन गया, हिन्दु कहने लगे हैं, आर्यत्व को आधुनिक काल में, परन्तु देखो, यह 'अप्रतिम्' विचार है देखो यदि वह संध्या उपासना करने लगता है तो यह विचार आता है कि तुझे और मत-मतान्तर वाले रूढ़िवादी न कहने लगे! अरे, भोले राजन्! यह तो मेरा कर्त्तव्य है, यह तो तेरे राष्ट्र का उन्नत होना है, तेरे यहां याग होना, समाज में याग होना, प्रत्येक समाज मानो याज्ञिक बन जाये तो राजा के राष्ट्र की महानता का कहना ही क्या मानो देखो, उसकी महानता का उद्गीत तो गाया नहीं जाता। मैंने कई काल में मेरे पूज्यपाद अभी-अभी मन-मग्न हो रहे थे। अपने में, यह अनुभव कर रहे थे कि 'मैं राम की यज्ञशाला में विद्यमान हूँ।' मेरे पूज्यपाद गुरुदेव की चित्रों के सम्बन्ध में, विज्ञान के सम्बन्ध में कितनी उड़ान है। आध्ुनिक काल का जो विज्ञानवेत्ता है, वह मंगल की यात्रा में भी अब कुछ समय में सफल होने जा रहा है, परन्तु देखो चन्द्रमा तक गया है। विचार आता रहता है, आधुनिक काल का वैज्ञानिक कहता है, कि जितना विज्ञान हमने जाना है इससे आगे विज्ञान था ही नहीं, परन्तु जितना जान रहे हैं।

कर्त्तव्यहीनता और रूढ़िवाद

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कई कालों में वर्णन कराया वह उद्दालिक गोत्र में कहीं ले गये, कहीं विद्यालयों में ले गये, अरे, विद्यालयों का तो यह है कि गुरु और शिष्य दोनों मानो देखो, अपने में कोई कर्त्तव्य का पालन नहीं कर रहा है, न आचार्य कर रहा है, न शिष्य कर रहा है। दोनों में एक-दूसरे को नष्टकरने की भावना बनी हुई है। राजा और प्रजा में भी इसी प्रकार है। मानो देखो, रक्तमयी क्रांति के संचार हो रहे हैं। उसके मूल में, मैंने कई काल में वर्णन किया कि यह जो रूढ़िवाद है। कोई मोहम्मद के मानने वाला है, कोई नानक के मानने वाला है, कोई ईसा के मानने वाला है, और भी नाना प्रकार की रूढ़िया। हैं, और रूढ़िया। जब तक समाप्त नहीं होंगी, राष्ट्र यह चाहे कि मेरे राष्ट्र में शान्ति की स्थापना हो जाये, यह असम्भव है। मानो देखो जब तक ये रूढ़िया। रहेंगी, अरे, रूढ़ियों में राष्ट्रवाद तक रूढ़िया। सीमित रह गई हैं, परमात्मा तक सीमित नहीं है, अरे यदि वह परमात्मा तक सीमित हो तो यह भी तो विचार करें कि परमात्मा तो सर्वज्ञ है, उसकी कोई स्थली ऐसी नहीं है, जहां उसका राष्ट्र नहीं है, परन्तु देखो अपना सूक्ष्म-सा राष्ट्र केवल इसलिए कि अपने पदों की लोलुपता और द्रव्य की वृत्तिया। और मानो संकीर्णवाद, देखो, मानव, मानव पर शासन करना चाहता है।

तो विचार आता रहता है कि मैं अपनो पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहता हू। कि इन रूढ़ियों के मूल में क्या है ? इन रूढ़ियों के मूल में, अज्ञान है, राष्ट्रवाद का जो जन्म होता है, वह अकर्त्तव्यवाद से होता है, अकर्त्तव्यवादी प्राणी होते हैं तो कर्त्तव्यवाद में लाने के लिये राजा मानो कर्त्तव्यवाद में लाना चाहता है, एक महापुरुष बन कर। जब मैं यह विचारता हू। कि कर्त्तव्य में लाना चाहता है, तो ये नाना प्रकार की रूढ़िया। हैं, परमात्मा का चिन्तन इसमें नहीं है, इसमें केवल देखो वह राष्ट्रवाद के ऊपर आक्रमण होता रहता है। अज्ञान, अज्ञान पर आक्रमण कर रहा है। परमात्मा के ऊपर देखो, अनुसन्धान नहीं कर रहा है। परमात्मा के ऊपर यदि प्राणी अनुसन्धान करे, तो यह राष्ट्र की रूढ़िया। समाप्त हो सकती हैं। तो विचार आता रहता है कि यह रूढ़िवाद मानव के लिए, राष्ट्र के लिए मानो एक घातक प्रणाली हैं और यह धर्म और मानवीय मर्यादा को नष्ट करने वाला है।

तो विचार आता रहता है, मैं कई काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव को परिचय कराने के लिए आता रहता हू।, और मैं परिचय केवल इतना ही देता रहता हू। कि आधुनिक काल में यदि विद्यालयों में मैं प्रवेश करता हू।,

तो विद्यालय में गुरु और शिष्य देनों, एक-दूसरे के रक्त के पिपासी बन रहे है। देखो, प्रजा और राजा एक-दूसरे के रक्त के पिपासी हैं। अरे, इसके मूल में क्या है? अनुशासन की हीनता कहलाती है। जब अनुशासन की हीनता हो जाती है, मानो देखो पुत्र पिता को नहीं चाहता, पिता पुत्र को नहीं चाहता, माता पुत्री को नहीं चाहती, मानो इस प्रकार की जो तत्परता है इसमें अज्ञान निहित रहता है। अरे, ज्ञान के क्षेत्र में, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कई समय से बड़ी-बड़ी अनूठी वार्ता प्रकट कर रहे हैं, उड़ानें उड़ी जा रहीं है। देखो, यह जो दमन-प्रवत्ति होती है, दमन-प्रवृत्ति, जिसके द्वारा आ जाये तो उसका विनाश कर देती है, इसीलिए मानव को अपने कर्त्तव्य में ही निहित हो जाना चाहिए। जिससे समाज में दृष्टिपात् करने वाला कर्त्तव्य पर आरूढ़ हो जाता है।

आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ, पूज्यपाद गुरुदेव से यह उच्चारण करा रहा हू।, मैं यह उद्गीत गाने आया हू।, हे पूज्यपाद! देखो, आधुनिक काल का राष्ट्र पदों की लोलुपता में है। वह यह नहीं चाहता यह रूढ़ि समाप्त हो जाये। वह धर्म को कहता है, 'मेरा कोई धर्म नहीं है।' अरे, जिसका कोई धर्म नहीं होता वह कौन होता है? वह तो एक पशु होता है, पशुत्व होता है। मानो उनका भी एक धर्म है, उनकी भी एक मर्यादा है, परन्तु देखो जब यह कहते हैं कि धर्म नहीं है, तो तुम तो पशु से भी ध्रुवा में चले गये। विचार आता रहता है धर्म, अरे, धर्म कोई नष्ट नहीं कर सकता। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने, मुझे धर्म के सम्बन्ध में, इन्द्रियों में धर्म का निर्णय दिया और यह धर्म मानो सर्वत्र ओत-प्रोत है, देखो परमपिता परमात्मा सर्वज्ञ हैं, परमात्मा सर्वज्ञ प्रकाशवान हैं, ऐसे ही धर्म भी मानो सर्वज्ञ है। रूढ़ि को धर्म नहीं कहते। धर्म इन्द्रियों में समाहित रहता है।

द्रव्य का सदुपयोग-दुरुपयोग

विचार आता रहता है, मैंने यह वाक् कई कालों में प्रकट किये। पूज्यपाद गुरुदेव को निर्णय कराता रहता हू।, परन्तु देखो मैं यह विचार रहा हूँ। हे यजमान! मेरा अन्तरात्मा तेरे साथ रहता है, क्योंकि इस काल में, जहां वाम-मार्ग का युग आ रहा है, वहां इस काल में द्रव्य का यागों के द्वारा सदुपयोग, मानो देवपूजा में रत हो रहा है। हे यजमान! तेरे गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहे। जहां द्रव्य का सदुपयोग होता है, वहां द्रव्य मानो उसके द्वारा भरण हो जाता है, और जहां द्रव्य का दुरुपयोग होता है, वहां द्रव्य उसके गृह से चला जाता है, दूरी चला जाता है, तो इसलिए मैं सदैव यह चाहता रहता हू।, 'धर्म प्रमाणं ब्रहे', यही तो धर्म की प्रतिभा है, यही मानव को ज्ञान और विज्ञान में लगाने वाला है, अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊ।गा।

पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने बड़े उद्गार दिये और इनके उद्गार मानो एक खिन्नता में परिणत रहते हैं। इनके उद्गारों में एक दाह है, एक वेदना है, एक विडम्बना है। उस विडम्बना को प्रभु सदैव दूरी करेंगे कि राष्ट्रवाद भी पवित्रवाद होगा। मानव समाज भी कर्त्तव्यवादी बनता रहता है और अकर्त्तव्यवादी भी बनता रहता है। यह दोनों ही प्रकार की प्रतिभा में समाज रहा है और रहता रहेगा।

आज का विचार अब यह समाप्त होने जा रहा है, आज के विचारों का अभिप्रायः यह कि हम परमपिता परमात्मा के रचाये हुए अनुपम याग के ऊपर विचार-विनिमय करते रहें, अनुसन्धान करते रहें। यदि अनुसन्धान हमारा शून्यता में चला गया तो हमारी क्रियाएं भी नष्ट हो जायेंगी, इसलिए याग का अनुसन्धान करना यह सष्टि के प्रारम्भ से कर्म चला आ रहा है, इसके ऊपर कोई आक्रमण भी करता है तो यह जीवित रहता है। तो यह आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन। वझीलपुर, हापुड़